

॥ विद्यारम्भ संस्कार ॥

संस्कार प्रयोजन- प्रत्येक अभिभावक का यह परम पुनीत धर्म कर्तव्य है कि बालक को जन्म देने के साथ-साथ आई हुई जिम्मेदारियों में से भोजन, वस्त्र आदि की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर उसकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध करे। जिस प्रकार कोई माता-पिता जन्म देने के बाद उसके पालन-पोषण की जिम्मेदारी से इंकार कर उसे कहीं झाड़ी आदि में फेंक दें, तो वे अपराधी माने जायेंगे। ठीक उसी प्रकार जो लोग बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध न करके, उन्हें मानसिक विकास एवं मानव जाति की संगृहीत ज्ञान-सम्पत्ति का साझेदार बनने से वंचित रखते हैं, वे भी उसी श्रेणी के अपराधी हैं, जैसे कि बच्चों को भूखों मार डालने वाले। इस पाप एवं अपराध से मुक्ति पाने के लिए हर अभिभावक को अपने हर बच्चे की शिक्षा का चाहे वह लड़की हो या लड़का, अपनी सामर्थ्यानुसार पूरा-पूरा प्रबंध करना होता है। इस धर्म कर्तव्य की पूर्ति का, अनुशासन का पालन करते हुए उसे अपने उत्तरदायित्व को निभाने की घोषणा के रूप में बालक का विद्यारम्भ संस्कार करना पड़ता है। देवताओं की साक्षी में समाज को यह बताना पड़ता है कि मैं अपने परम पवित्र कर्तव्य को भूला नहीं हूँ, वरन् उसकी पूर्ति के लिए समुचित उत्साह के साथ कटिबद्ध हो रहा हूँ। ऐसा ही प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिए। किसी को भी अपनी सन्तान को विद्या से वंचित नहीं रहने देना चाहिए। विद्यारम्भ संस्कार द्वारा बालक-बालिका में उन मूल संस्कारों की स्थापना का प्रयास किया जाता है, जिनके आधार पर उसकी शिक्षा मात्र ज्ञान न रहकर जीवन निर्माण करने वाली हितकारी विद्या के रूप में विकसित हो सके। समारोह द्वारा बालक के मन में ज्ञान प्राप्ति के लिए उत्साह पैदा किया जाता है। उत्साहभरी मनोभूमि में देवाराधन तथा यज्ञ के संयोग से वांछित ज्ञानपरक संस्कारों का बीजारोपण भी संभव हो जाता है।

विशेष व्यवस्था-विद्यारम्भ संस्कार के लिए सामान्य तैयारी के अतिरिक्त नीचे लिखी व्यवस्थाएँ पहले से ही बना लेनी चाहिए।

१-पूजन के लिए गणेशजी एवं माँ सरस्वती के चित्र या प्रतिमाएँ।

२-पट्टी, दवात और लेखनी, पूजन के लिए। बच्चे को लिखने में

सुविधा हो, इसके लिए स्लेट, खड़िया भी रखी जा सकती है।

३-गुरु पूजन के लिए प्रतीक रूप में नारियल रखा जा सकता है। बालक के शिक्षक प्रत्यक्ष में हों, तो उनका पूजन भी कराया जा सकता है।

॥ गणेश एवं सरस्वती पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- गणेश को विद्या और सरस्वती को शिक्षा का प्रतीक माना गया है। विद्या और शिक्षा एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरी अधूरी है। शिक्षा उसे कहते हैं जो स्कूलों में पढ़ाई जाती है। भाषा, लिपि, गणित, इतिहास, शिल्प, रसायन, चिकित्सा, कला, विज्ञान आदि विभिन्न प्रकार के भौतिक ज्ञान इसी क्षेत्र में आते हैं। शिक्षा से मस्तिष्क की क्षमता विकसित होती है और उससे लौकिक सम्पत्तियों, सुविधाओं, प्रतिष्ठाओं एवं अनुभूतियों का लाभ मिलता है। सांसारिक जीवन की सुख-सुविधा के लिए इस प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता भी है। यह सरस्वती आराधना है।

विद्या के प्रतिनिधि गणेश जी हैं। विद्या का अर्थ है विवेक एवं सद्भाव की शक्ति। सद्गुण इसी वर्ग में गिने जाते हैं। उचित और अनुचित का, कर्तव्य और अकर्तव्य का विवेक विद्वानों को ही होता है। आज के छोटे से लाभ-हानि की तुलना में वे दूरवर्ती हानि-लाभ को महत्व देते हैं और इतना साहस और धैर्य बनाये रहते हैं, जिसके आधार पर दूरवर्ती बड़े लाभ के लिए वर्तमान में थोड़ा कष्ट सह सकें अथवा भविष्य की अधिक हानि को कठिनाइयों का स्वरूप समझते हुए आज के छोटे-मोटे प्रलोभन या आकर्षण का परित्याग कर सकें। विचारों और वर्णों को सुव्यवस्थित बनाने के लिए किया हुआ श्रम-गणेश की आराधना के लिए किया गया तप ही मानना चाहिए। आदर्शवादिता की उच्चस्तरीय सद्भावनाओं का समावेश जिस विचारणा में सन्निहित हो, उन्हें गणेश कहना चाहिए।

गणेश के बाद सरस्वती का पूजन कराया जाता है। गणेश का स्थान प्रथम और सरस्वती का दूसरा है। भावना को प्रधान और चतुरता को गौण माना गया है। शिक्षा के, चतुरता के ऊपर विवेक एवं आदर्श को अंकुश लिए हुए देखा जा सकता है। धर्म, कर्तव्य एवं औचित्य का, गणेश का नियंत्रण हमारी सारी गतिविधियों पर होना चाहिए। अन्यथा वे निरंकुश

होकर उच्छृंखलता बरतेंगी और पतन के गहन गर्त में गिरा देंगी। बालक चाहे जितनी विद्या पढ़े, विद्वान् और क्रियाकुशल कितना ही अधिक क्यों न हो जाए, उसे आजीवन यह स्मरण रखना चाहिए कि सदुद्देश्य से एक कदम भी विचलित न हुआ जाए। समृद्धियों एवं विभूतियों को तनिक भी उच्छृंखल न होने दिया जाए। शिक्षा और बुद्धि का दुरुपयोग न होने पाए। उनके द्वारा जो भी प्रगति हो, वह पतन की ओर नहीं, उत्थान की ओर ही ले जाने वाली हो। मस्तिष्क पर सदैव विवेक का नियंत्रण बना रहे, इस तथ्य को हृदय में प्रतिष्ठापित करने के लिए बालक विद्यारम्भ के समय गणेश पूजन करता है।

माता का स्नेह जिस प्रकार पुत्र के लिए आजीवन आवश्यक है, उसी प्रकार विद्या का, सरस्वती का अनुग्रह भी मनुष्य पर आजीवन रहना चाहिए। सरस्वती माता हमारी प्रत्यक्ष देवी हैं-अध्ययन के द्वारा ही उनकी आराधना होती है। उपासना, आहार, स्नान, शयन आदि की तरह अध्ययन भी हमारे दैनिक जीवन में आवश्यकता का एक अंग बना रहे, तो समझना चाहिए कि सरस्वती पूजन का वास्तविक तात्पर्य समझ लिया गया।

॥ गणेश पूजन ॥

क्रिया और भावना- बालक के हाथ में अक्षत, पुष्प, रोली देकर मन्त्र के साथ गणपति जी के चित्र के सामने अर्पित कराएँ। भावना करें कि इस आवाहन-पूजन के द्वारा विवेक के अधिष्ठाता से बालक की भावना का स्पर्श हो रहा है। उनके अनुग्रह से बालक मेधावी और विवेकशील बनेगा।

ॐ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे, प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे, निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे, वसोमम।
आहमजानि गर्भधमात्ममजासि गर्भधम्। ॐ गणपतये नमः।
आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥-२३.१९

॥ सरस्वती पूजन ॥

क्रिया और भावना- बालक के हाथ में अक्षत, पुष्प, रोली आदि देकर मन्त्र बोलकर माँ सरस्वती के चित्र के आगे पूजा भाव से समर्पित कराएँ। भावना करें कि यह बालक कला, ज्ञान, संवेदना की देवी माता सरस्वती के स्नेह का पात्र बन रहा है। उनकी छत्रछाया का रसास्वादन करके यह ज्ञानार्जन

में सतत रस लेता हुआ आगे बढ़ सकेगा।

ॐ पावका नः सरस्वती, वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टुधियावसुः। ॐ सरस्वत्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

-२०.८४

॥ उपकरणों-माध्यमों की पवित्रता ॥

गणेश और सरस्वती पूजन के उपरांत शिक्षा के उपकरणों - दवात, कलम और पट्टी का पूजन किया जाता है। शिक्षा प्राप्ति के लिए यह तीनों ही प्रधान उपकरण हैं। इन्हें वेदमंत्रों से अभिमंत्रित किया जाता है, ताकि उनका प्रारम्भिक प्रभाव कल्याणकारी हो सके। विद्या प्राप्ति में सहायता मिल सके। मंत्रों से इन तीनों को पवित्र अभिमंत्रित किया जाता है, ताकि इन उपकरणों में पवित्रता स्थिर रखी जा सके।

उपकरणों की पवित्रता हर कार्य में आवश्यक है। साधन पवित्र होंगे, तो ही साध्य की उत्कृष्टता कायम रखी जा सकेगी। गलत उपायों से, दूषित उपकरणों से यदि कोई सफलता प्राप्त कर भी ली जाए, तो उस सफलता का लाभ उतना सुखप्रद नहीं होता, जितना कि अनुपयुक्त माध्यमों को अपनाने में बिगड़ा अपना स्वभाव अपने लिए दूरगामी अहित एवं अनिष्ट उत्पन्न करता है। जिस प्रकार स्वच्छ बर्तन में रखा हुआ दूध ही पीने योग्य होता है, मैले-गंदे बर्तन में रखने से वह फट जाता है और पीने पर रोग-विकार उत्पन्न करता है, उसी प्रकार अनुपयुक्त उपकरणों से जो भी कार्य किया जाता है, वह बाहर से कितना ही अच्छा क्यों न दीखता हो, कितना ही जल्दी सफल क्यों न हुआ हो-अवांछनीय है।

विद्यारम्भ संस्कार का प्रयोजन यह है कि शिक्षार्थी का ध्यान विद्या की महत्ता एवं उपकरणों की पवित्रता की ओर आकर्षित किया जाए। अध्ययन तो निमित्त मात्र है, वस्तुतः 'उपकरणों की पवित्रता' यह एक आदर्श दृष्टिकोण है, जिसे हर क्षेत्र में अपनाया जाना चाहिए। हम जो कुछ भी कार्य, व्यवहार एवं प्रयोग करें, उसमें इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखें कि किसी प्रलोभन या जल्दबाजी में अनुपयुक्त साधनों का उपयोग न किया जाए। अपना हर उपकरण पूरी तरह पवित्र रहे।

शिक्षा की तीन अधिष्ठात्री देवियाँ- उपासना विज्ञान की मान्यताओं के आधार पर कलम की अधिष्ठात्री देवी 'धृति', दवात की अधिष्ठात्री देवी 'पुष्टि' और पट्टी की अधिष्ठात्री देवी 'तुष्टि' मानी गई है। षोडश मातृकाओं में धृति, पुष्टि, तथा तुष्टि तीन देवियाँ उन तीन भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो विद्या प्राप्ति के लिए आधारभूत हैं। विद्यारम्भ संस्कार में कलम-पूजन का मन्त्र बोलते समय धृति का आवाहन करते हैं। निर्धारित मंत्रों में उन्हीं की वंदना, अभ्यर्थना की गयी है।

॥ लेखनी पूजन ॥

शिक्षण और प्रेरणा- विद्यारम्भ करते हुए पहले कलम हाथ में लेनी पड़ती है। कलम की देवी धृति का भाव है 'अभिरुचि'। विद्या प्राप्त करने वाले के अन्तःकरण में यदि उसके लिए अभिरुचि होगी, तो प्रगति के समस्त साधन बनते चले जायेंगे। बिना रुचि जाग्रत हुए पढ़ना ही नहीं, कोई भी काम भाररूप प्रतीत होता है, उसमें मन नहीं लगता, अधूरे मन से किये हुए काम तो अस्त-व्यस्त एवं बेतुके रहते हैं। ऐसी दशा में कोई उल्लेखनीय सफलता भी नहीं मिलती। तीव्र बुद्धि और बढ़िया मस्तिष्क भी तब कुछ विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं होते; किन्तु यदि पढ़ने में तीव्र अभिरुचि हो, तो मंद बुद्धि भी अपने अध्यवसाय के बल पर आशाजनक प्रगति कर लेते हैं।

अभिभावकों का कर्तव्य है कि शिक्षार्थी की अभिरुचि जगाएँ, उसे विद्या प्राप्ति के लाभ बताएँ। उनके उदाहरण सुनाएँ, जो पढ़े-लिखे होने के कारण ऊँची स्थिति प्राप्त करने में धन, यश एवं सुविधा-साधन उपार्जित कर सकने में सफल हुए। साथ ही ऐसे उदाहरण भी सुनाने चाहिए, जिनमें पारिवारिक सुख साधनों से संतुष्ट लड़कों ने पढ़ने में उपेक्षा की और अंत में साधन जब बिखर गये, तब उन्हें अपने अशिक्षित, अविकसित व्यक्तित्व के आधार पर जीवन-यापन के साधन जुटाने में कितनी कठिनाई उठानी पड़ी। शिक्षा मनुष्यत्व का सम्मान है और अशिक्षित होना अपमान। अशिक्षित या स्वल्प शिक्षित रहना किसी व्यक्ति के पारिवारिक या व्यक्तित्व स्तर के गिरे हुए होने का ही प्रमाण माना जाता है। इस अपमान से हर किसी को बचना व बचाया जाना चाहिए। 'धृति' की अभियोजना कलम का पूजन कराते समय इस प्रकार

की जाए कि शिक्षार्थी की अभिरुचि अध्ययन में निरंतर बढ़ती चली जाए।

क्रिया और भावना- पूजन सामग्री बालक के हाथ में दी जाए। पूजा की चौकी पर स्थापित कलम पर उसे मंत्र के साथ श्रद्धापूर्वक चढ़ाया जाए। भावना की जाए कि धृति शक्ति बालक की विद्या के प्रति अभिरुचि को परिष्कृत कर रही है।

ॐ पुरुदस्मो विषुरूपऽ इन्दुः, अन्तर्महिमानमानञ्जधीरः ॥ एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीम्, अष्टापदीं भुवनानु प्रथन्तां स्वाहा । - ८.३०

॥ दवात पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- कलम का उपयोग दवात के द्वारा होता है। स्याही या खड़िया के सहारे ही कलम कुछ लिख पाती है। इसलिए कलम के बाद दवात के पूजन का नंबर आता है। दवात की अधिष्ठात्री देवी 'पुष्टि' हैं। पुष्टि का भाव है-एकाग्रता। एकाग्रता से अध्ययन की प्रक्रिया गतिशील-अग्रगामिनी होती है। कितने ही व्यक्ति तीव्र बुद्धि के होते हैं, मस्तिष्क बढ़िया काम करता है, पढ़ना भी चाहते हैं; पर मन अनेक दिशाओं में भागा फिरता है, एकाग्र नहीं होता, चंचलता भरी रहती है, प्रस्तुत विषय में चित्त जमता नहीं। ऐसे डावाँडोल मन वाले शिक्षार्थी की प्रगति संदिग्ध बनी रहती है। जब चित्त लगेगा ही नहीं, तो मस्तिष्क पकड़ेगा क्या ? आरंभ में मन्द बुद्धि समझे जाने वाले शिक्षार्थी आगे चलकर बहुत ही प्रतिभावान् सिद्ध होते हुए भी देखे गये हैं। आश्चर्यजनक परिवर्तन के पीछे उनकी एकाग्रता ही प्रधान कारण होती है।

दवात के कंठ में कलावा बाँधा जाता है व रोली, धूप, अक्षत, पुष्प आदि से पूजन किया जाता है। यह दवात की अधिष्ठात्री देवी 'पुष्टि' का अभिवंदन है। इस पूजा का प्रयोजन यह है कि शिक्षार्थी को एकाग्रता का महत्त्व समझाया जाना चाहिए और इसका उसे व्यावहारिक अभ्यास भी कराया जाना चाहिए। समुचित मात्रा में अभिरुचि हो और साथ ही एकाग्रता का अभ्यास हो जाए, तो फिर विद्या लाभ की दिशा में आशाजनक सफलता संभव हो जाती है।

क्रिया और भावना- पूजा वेदी पर स्थापित दवात पर बालक के हाथ से मन्त्रोच्चार के साथ पूजन सामग्री अर्पित कराई जाए। भावना की जाए कि

अपने परिश्रम और शिष्टाचार से उन्हें प्रसन्न रखने का प्रयत्न करे। इसी प्रकार अध्यापक का भी कर्तव्य है कि वह शिक्षार्थी को अपने पुत्र की तरह समझे, उसे अक्षर ज्ञान ही नहीं, स्नेह, सद्भाव, वात्सल्य भी प्रदान करें।

क्रिया और भावना- मंत्र के साथ बालक द्वारा गुरु के अभाव में उनके प्रतीक का पूजन कराया जाए। भावना की जाए कि इस श्रद्धा प्रक्रिया द्वारा बालक में वे शिष्योचित गुण विकसित हो रहे हैं, जिनके आधार पर शिष्य भी धन्य हो जाता है और गुरु भी। गुरु तत्त्व का कृपा भाजन बालक बना रहे।

ॐ बृहस्पते अति यदर्योऽ, अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु,
यदीदयच्छवसऽ ऋतप्रजात, तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्।
उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये, त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥
ॐ श्री गुरुवे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

- २६३, तैत्ति० सं० १८.२२.१२

॥ अक्षर लेखन एवं पूजन ॥

शिक्षण और प्रेरणा- इसके पश्चात् पट्टी पर बालक के हाथ से 'ॐ भूर्भुवः स्वः' शब्द लिखाया जाए। खड़िया से उन अक्षरों को अध्यापक बना दें और बालक उस पर कलम फेरकर अक्षर बना दे अथवा अध्यापक और छात्र दोनों कलम पकड़ लें और उपरोक्त पंचाक्षरी गायत्री मन्त्र को पट्टी पर लिख दें। ॐ परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ नाम है, भूः भुवः स्वः के यों अनेक प्रयोजनों के लिए अनेक अर्थ हैं, पर विद्यारंभ संस्कार में उनके गुण बोधक अर्थ ही व्याख्या योग्य हैं। भूः का तात्पर्य श्रम, भुवः का संयम और स्वः का विवेक है। शिक्षा का प्रयोजन इन तीन महान् प्रवृत्तियों को जाग्रत, समुन्नत करना ही है। शिक्षित व्यक्ति यदि परिश्रमी, संयमी और विवेकवान् है, तो समझना चाहिए कि उसका पढ़ना सार्थक हुआ, अन्यथा पढ़े गधे, तो लगभग करोड़ों गली-कूचों में भरे पड़े हैं, वे अधिक पैसा बनाने और अधिक खुरापात करने के अतिरिक्त और कुछ बड़ी बात कर नहीं पाते। विद्यारम्भ करते हुए सबसे प्रथम यह पाँच अक्षर इसलिए लिखाये जाते हैं कि बालक ॐ परमात्मा को अपनी मनोभूमि में सर्वोपरि स्थान दे। आस्तिक बने, ईश्वर से डरे,

सदाचारी बने, निरालस्य कर्मरत रहे, संयम और व्यवस्था का कदम-कदम पर ध्यान रखे, भ्रान्तियों से बचकर विवेक को अपनाये और हँसते-खेलते दूसरों को प्रसन्न रखते हुए जीवन व्यतीत करे। यही पंचाक्षरी प्रशिक्षण शिक्षा के उद्देश्य का सार है। विद्या उसी का नाम है, जो मनुष्य के सद्गुणों को बढ़ाए। ॐ भूर्भुवः स्वः का सर्वप्रथम लेखन विद्यारम्भ संस्कार के समय इसी दृष्टि से कराया जाता है।

क्रिया और भावना- अक्षर लेखन करा लेने के बाद उन पर अक्षत, पुष्प छुड़वाएँ। ज्ञान का उदय अन्तःकरण में होता है, पर यदि उसकी अभिव्यक्ति करना न आए, तो भी अनिष्ट हो जाता है। ज्ञान की प्रथम अभिव्यक्ति अक्षरों को पूजकर अभिव्यक्ति की महत्ता और साधना के प्रति उमंग पैदा की जाए।
ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च, नमः शंकराय च मयस्कराय च, नमः शिवाय च शिवतराय च।

- १६.४१

इसके बाद अग्नि स्थापन से लेकर गायत्री मन्त्र की आहुति तक का क्रम चले। बालक को भी उसमें सम्मिलित रखें।

॥ विशेष आहुति ॥

हवन सामग्री में कुछ मिष्ठान्न मिलाकर पाँच आहुतियाँ निम्न मन्त्र से कराएँ। भावना करें, यज्ञीय ऊर्जा बालक के अन्दर संस्कार द्वारा पड़े प्रभाव को स्थिर और बलिष्ठ बना रही है।

ॐ सरस्वती मनसा पेशलं, वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः।
रसं परिस्तुता न रोहितं, नग्नहूर्ध्वोरस्तसरं न वेम स्वाहा। इदं सरस्वत्यै इदं न मम ॥

- १९.८३

विशेष आहुति के बाद यज्ञ के शेष कर्म पूरे करके आशीर्वचन, विसर्जन एवं जयघोष के बाद प्रसाद वितरण करके समापन किया जाए।

॥ यज्ञोपवीत संस्कार ॥

संस्कार प्रयोजन- शिखा और सूत्र भारतीय संस्कृति के दो सर्वमान्य प्रतीक हैं। शिखा भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था की प्रतीक है, जो मुण्डन संस्कार के समय स्थापित की जाती है। यज्ञोपवीत सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर अपने जीवन में आमूलचूल परिवर्तन के संकल्प का प्रतीक है। इसके साथ ही गायत्री मंत्र की गुरुदीक्षा भी दी जाती है। दीक्षा यज्ञोपवीत मिलकर द्विजत्व का संस्कार पूरा करते हैं। इसका अर्थ होता है- 'दूसरा जन्म' शास्त्रवचन है- 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते' ॥

जन्म से मनुष्य एक प्रकार का पशु ही है। उसमें स्वार्थपरता की वृत्ति अन्य जीव-जन्तुओं जैसी ही होती है, पर उत्कृष्ट आदर्शवादी मान्यताओं द्वारा वह मनुष्य बनता है। जब मानव की आस्था यह बन जाती है कि उसे इन्सान की तरह ऊँचा जीवन जीना है और उसी आधार पर वह अपनी कार्यपद्धति निर्धारित करता है, तभी कहा जा सकता है कि इसने पशु-योनि छोड़कर मनुष्य योनि में प्रवेश किया। अन्यथा नर-नारियों से तो यह संसार भरा पड़ा है। स्वार्थ की संकीर्णता से निकलकर परमार्थ की महानता में प्रवेश करने को, पशुता को त्याग कर मनुष्यता ग्रहण करने को दूसरा जन्म कहते हैं। शरीर-जन्म माता-पिता के रज-वीर्य से वैसा ही होता है, जैसा अन्य जीवों का। आदर्शवादी जीवन लक्ष्य अपना लेने की प्रतिज्ञा करना ही वास्तविक मनुष्य जन्म में प्रवेश करना है। इसी को द्विजत्व कहते हैं। द्विजत्व का अर्थ है दूसरा जन्म। हर हिन्दू धर्मानुयायी को आदर्शवादी जीवन जीना चाहिए, द्विज बनना चाहिए। इस मूल तथ्य को अपनाने की प्रक्रिया को समारोहपूर्वक यज्ञोपवीत संस्कार के नाम से सम्पन्न किया जाता है। इस व्रत बंधन को आजीवन स्मरण रखने और व्यवहार में लाने की प्रतिज्ञा का प्रतीक तीन लड़ों वाला यज्ञोपवीत कन्धे पर डाले रहना होता है।

यज्ञोपवीत बालक को तब देना चाहिए, जब उसकी बुद्धि और भावना का इतना विकास हो जाए कि इस संस्कार के प्रयोजन को समझकर उसके निर्वाह के लिए उत्साहपूर्वक लग सके।

यज्ञोपवीत से सम्बन्धित स्थूल-सूक्ष्म मर्यादाएँ इस प्रकार हैं-

१- यज्ञोपवीत गायत्री की मूर्तिमान् प्रतिमा है। गायत्री त्रिपदा है, गायत्री मंत्र में तीन चरण हैं; इसी आधार पर यज्ञोपवीत में तीन लड़ें हैं। यज्ञोपवीत की प्रत्येक लड़ में तीन धागे होते हैं। यज्ञोपवीत में तीन गाँठों को भूः भुवः स्वः तीन व्याहृतियाँ माना गया है। गायत्री के 'ॐकार' को बड़ी ब्रह्म ग्रन्थि कहा गया है। गायत्री के एक-एक पद को लेकर ही उपवीत की रचना हुई है। इस प्रतिमा को शरीर मन्दिर में स्थापित करने पर उसकी पूजा-अर्चना करने का उत्तरदायित्व भी स्वीकार करना होता है। इसके लिए नित्य कम से कम एक माला गायत्री मन्त्र जप की साधना करनी चाहिए।

२- यज्ञोपवीत को व्रत बन्ध कहते हैं। व्रतों से बँधे बिना मनुष्य का उत्थान सम्भव नहीं। यज्ञोपवीत को व्रतशीलता का प्रतीक मानते हैं। इसीलिए इसे सूत्र (फार्मूला-सहारा) भी कहते हैं। यज्ञोपवीत के नौ धागे नौ गुणों के प्रतीक हैं। प्रत्येक धारण करने वाले को इन गुणों को अपने में बढ़ाने का निरन्तर ध्यान बना रहे, यह स्मरण जनेऊ के धागे दिलाते रहते हैं। गायत्री गीता (गायत्री महाविज्ञान भाग-२) के अनुसार गायत्री मंत्र के नौ शब्दों में सन्निहित सूत्र इस प्रकार है:-

१. तत् - यह परमात्मा के उस जीवन्त अनुशासन का प्रतीक है, जन्म और मृत्यु जिसके ताने-बाने हैं। इसे आस्तिकता - ईश्वर-निष्ठा के सहारे जाना जाता है। उपासना इसका आधार है।

२. सवितुर् - सविता, शक्ति उत्पादक केन्द्र है। साधक में शक्ति विकास का क्रम चलना चाहिए। यह जीवन-साधना से साध्य है।

३. वरेण्यं - श्रेष्ठता का वरण, आदर्श-निष्ठा, सत्य, न्याय, ईमानदारी के रूप में यह भाव फलित होता है।

४. भर्गो - विकारनाशक तेज है, जो मन्यु साहस के रूप में उभरता और निर्मलता, निर्भयता के रूप में फलित होता है।

५. देवस्य - दिव्यतावर्द्धक है। संतोष, शान्ति, निस्पृहता, संवेदना, करुणा आदि के रूप में प्रकट होता है।

६. धीमहि - सद्गुण धारण का गुण, जो पात्रता विकास और समृद्धिरूप में फलित होता है।

७. धियो - दिव्य मेधा, विवेक का प्रतीक शब्द है, समझदारी,

विचारशीलता, निर्णायक क्षमता आदि का संवर्द्धक है।

८. यो नः - दिव्य अनुदानों के सुनियोजन, संयम का प्रतीक है। धैर्य, ब्रह्मचर्यादि का उन्नायक है।

९. प्रचोदयात् - दिव्य प्रेरणा, आत्मीयताजन्य सेवा साधना, सत्कर्तव्य निष्ठा का विकासक है।

यज्ञोपवीत के धागों में नीति का सम्पूर्ण सार सन्निहित कर दिया गया है। जैसे कागज और स्याही के सहारे किसी नगण्य से पत्र या तुच्छ सी लगने वाली पुस्तक में अत्यंत महत्वपूर्ण ज्ञान-विज्ञान भर दिया जाता है, उसी प्रकार सूत्र के इन नौ धागों में जीवन-विकास का सारा मार्गदर्शन समाविष्ट कर दिया गया है। इन धागों को कन्धे पर, कलेजे पर, हृदय पर, पीठ पर प्रतिष्ठित करने का प्रयोजन यह है कि सन्निहित शिक्षा को यज्ञोपवीत के धागे स्मरण कराते रहें, ताकि उन्हें जीवन-व्यवहार में उतारा जा सके।

यज्ञोपवीत को माँ गायत्री और यज्ञ पिता की संयुक्त प्रतिमा मानते हैं। उसकी मर्यादा के कई नियम हैं, जैसे-

(१) यज्ञोपवीत को मल-मूत्र विसर्जन के पूर्व दाहिने कान पर चढ़ा लेना चाहिए और हाथ स्वच्छ करके ही उतारना चाहिए। इसका स्थूल भाव यह है कि यज्ञोपवीत कमर से ऊँचा हो जाए और अपवित्र न हो। अपने व्रतशीलता के संकल्प का ध्यान इसी बहाने बार-बार किया जाए।

(२) यज्ञोपवीत का कोई तार टूट जाए या ६ माह से अधिक समय हो जाए, तो बदल देना चाहिए। खण्डित प्रतिमा शरीर पर नहीं रखते। धागे कच्चे और गंदे होने लगें, तो पहले ही बदल देना उचित है।

(३) जन्म-मरण के सूतक के बाद इसे बदल देने की परम्परा है। जिनके गोद में छोटे बच्चे नहीं हैं, वे महिलाएँ भी यज्ञोपवीत सँभाल सकती हैं; किन्तु उन्हें हर मास मासिक शौच के बाद उसे बदल देना पड़ता है।

(४) यज्ञोपवीत शरीर से बाहर नहीं निकाला जाता। साफ करने के लिए उसे कण्ठ में पहने रहकर ही घुमाकर धो लेते हैं। भूल से उतर जाए, तो प्रायश्चित्त की एक माला जप करने या बदल लेने का नियम है।

(५) देव प्रतिमा की मर्यादा बनाये रखने के लिए उसमें चाबी के गुच्छे आदि न बाँधें। इसके लिए भिन्न व्यवस्था रखें।

बालक जब इन नियमों के पालन करने योग्य हो जाएँ तभी उनका यज्ञोपवीत करना चाहिए।

यज्ञोपवीत भारतीय धर्म का पिता है और गायत्री भारतीय संस्कृति की माता, दोनों का जोड़ा है। यज्ञ पिता को कन्धे पर और गायत्री माता को हृदय में एक साथ धारण किया जाता है। गायत्री प्रत्येक भारतीय धर्मानुयायी का गुरु मन्त्र है। उसे यज्ञोपवीत के समय पर ही विधिवत् ग्रहण करना चाहिए। ज्ञान की मशाल को, अन्तःकरण में अवस्थित सदगुणों को ही गुरु मानना चाहिए। आज उस स्तर के गुरु दीख नहीं पड़ते, जो स्वयं पार हो चले हों और दूसरों को अपनी नाव पर बिठा कर पार लगा सकें। जिधर भी दृष्टि डाली जाती है, नकलीपन और धोखा ही भरा मिलता है। अस्तु, यह अच्छा है कि व्यक्तियों को गुरु न बनाया जाए। अन्तःकरण के प्रकाश को तथा प्रत्यक्ष में ज्ञान-यज्ञ की दिव्य ज्योति - लाल मशाल को सदगुरु माना जाए और यज्ञोपवीत के समय शुद्ध उच्चारण की दृष्टि से किसी भी श्रेष्ठ व्यक्ति से मन्त्रारम्भ की प्रक्रिया पूरी की जाए।

विशेष व्यवस्था- यज्ञोपवीत संस्कार के लिए यज्ञादि की सामान्य व्यवस्था के साथ-साथ नीचे लिखी व्यवस्थाओं पर भी दृष्टि रखनी चाहिए-

१- पुरानी परम्परा के अनुसार यज्ञोपवीत लेने वाले बालकों का मुण्डन करा दिया जाता था, उद्देश्य था शरीर की शृंगारिकता के प्रति उदासीनता। जिन्हें यज्ञोपवीत लेना हो, उनसे एक दिन पूर्व बाल कटवा-छँटा कर शालीनता के अनुरूप करा लेने का आग्रह किया जा सकता है।

२- जितनों का यज्ञोपवीत होना है, उसके अनुसार मेखला, कोपीन, दण्ड, यज्ञोपवीत, पीले दुपट्टों की व्यवस्था करा लेनी चाहिए।

मेखला और कोपीन संयुक्त रूप से दी जाती है। मेखला कहते हैं कमर में बाँधने योग्य नाड़े जैसे सूत्र को। कपड़े की सिली हुई सूत की डोरी, कलावे के लम्बे टुकड़े से मेखला बना लेनी चाहिए। कोपीन लगभग ४ इंच चौड़ी डेढ़ फुट लंबी लँगोटी होती है। इसे मेखला के साथ टाँक कर भी रखा जा सकता है। दण्ड के लिए लाठी या ब्रह्म दण्ड जैसा रोल भी रखा जा सकता है। यज्ञोपवीत पीले रँगकर रखे जाने चाहिए। न रंग पाएँ, तो उनकी गाँठ को हल्दी से पीला कर देना चाहिए। संस्कार कराने वालों से पहले से ही

कहकर रखा जाए कि सभी या कम से कम एक नया वस्त्र धारण करके बैठें। नया दुपट्टा भी लेना पर्याप्त है। संस्कार कराने वाले हर व्यक्ति के लिए पीले दुपट्टे की व्यवस्था करा ही लेनी चाहिए।

३- गुरु पूजन के लिए लाल मशाल का चित्र रखना चाहिए। गुरु व्यक्ति नहीं चेतना रूप है, ऐसा समझकर युग शक्ति की प्रतीक मशाल को ही गुरु का प्रतीक मानकर रखना अधिक उपयुक्त है।

४- वेद का अर्थ है- ज्ञान। वेद पूजन के लिए वेद की पुस्तक उपलब्ध न हो, तो कोई भी पवित्र पुस्तक पीले वस्त्र में लपेट कर पूजा वेदी पर रख देनी चाहिए।

५- गायत्री, सावित्री एवं सरस्वती पूजन के लिए पूजन वेदी पर चावल की तीन छोटी-छोटी ढेरियाँ रख देनी चाहिए।

देव पूजन, रक्षाविधान तक के उपचार पूरे करके विशेष कर्मकांडों को क्रमबद्ध रूप से कराया जाता है। समय और परिस्थितियों के अनुरूप प्रेरणाएँ एवं व्याख्याएँ भी की जानी चाहिए। क्रिया-निर्देश और भाव-संयोग का क्रम पूरी सावधानी के साथ बनाया जाए।

॥ मेखला-कोपीन धारण ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- मेखला कोपीन धारण करने का प्रयोजन ब्रह्मचर्य पालन और प्रत्येक कार्य में जागरूक, निरालस्य एवं कर्तव्य पालन में कटिबद्ध रहने की प्रेरणा देना है। कोपीन पहनना अर्थात् लँगोट बाँधना। ब्रह्मचारी भी पहलवान की तरह लँगोट बाँधते हैं। लँगोट बाँधना ब्रह्मचर्य पालन का प्रतीक है। किशोरों को यही रीति-नीति अपनानी चाहिए, उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि शारीरिक बढ़ोतरी की उम्र में आवश्यक शक्ति का उपयोग शरीर एवं मन को विकसित होने में लगाना चाहिए। यदि उस अवधि में उसे नष्ट किया गया, तो शरीर और मन दोनों का ही विकास रुक जायेगा। अपव्यय के कारण जो खोखलापन इन दिनों उत्पन्न हो जायेगा, उसकी क्षति पूर्ति फिर कभी न हो सकेगी, लड़कियों की शारीरिक अभिवृद्धि २० वर्ष की आयु तक और लड़कों की २५ वर्ष तक होती है। यह समय दोनों के लिए सतर्कतापूर्वक शक्तियों के संरक्षण का है, ताकि उनका उपयोग शारीरिक एवं

मानसिक स्वास्थ्य की नींव पक्की करने में हो सके। यह अवधि विद्या पढ़ने, मानसिक विकास करने एवं व्यायाम, ब्रह्मचर्य आदि के द्वारा शारीरिक परिपुष्टता प्राप्त करने की है। जो कच्ची उम्र में जीवन रस के साथ खिलवाड़ करना शुरू कर देते हैं, वे एक प्रकार से आत्म-हत्या करते हैं।

कमर में मेखला बाँधने का प्रयोजन वही है, जो पुलिस तथा फौज के सैनिक कमर में पेटी बाँधकर पूरा करते हैं। कमर बाँधकर कटिबद्ध रहना जागरूकता एवं सतर्कता का चिह्न है। आलस्य और प्रमाद छोड़कर अपने नियत कर्तव्य-कर्म के लिए मनुष्य को सदा उत्साह एवं प्रसन्नता के साथ तत्पर रहना चाहिए। आलस्य, प्रमाद, लापरवाही, ढील-पोल, दीर्घसूत्रता जैसे दुर्गुणों को पास भी नहीं फटकने देना चाहिए, आलसी और लापरवाह व्यक्ति हर दिशा में अपनी अपार क्षति करते हैं। आलस्य चाहे शारीरिक, आर्थिक हो, चाहे मानसिक उसे साक्षात् मूर्तिमान् दारिद्र्य या दुर्भाग्य ही कहना चाहिए। इस बुरी आदत से सर्वथा बचा जाए, इसके लिए मेखला पहनाते हुए यज्ञोपवीतधारी को यह प्रेरणा दी जाती है कि वह कार्य क्षेत्र में संसार में सदा अपने कर्तव्य पालन के लिए फौजी सैनिक की तरह कटिबद्ध रहे। जागरूकता और सतर्कता को, स्फूर्ति और आशा को, साहस और धैर्य को अपना सच्चा सहचर समझें।

क्रिया और भावना- मेखला एवं कोपीन एकत्रित रखकर आचार्य तीन बार गायत्री मन्त्र बोलते हुए उन पर जल के छींटे लगायें। भावना करें कि इनमें समय और तत्परता के संस्कार पैदा किये जा रहे हैं।

सिंचन के बाद उन्हें संस्कार कराने वालों के पास पहुँचा दिया जाए। वे उन्हें हाथों के सम्पुट में रखें। मन्त्रोच्चार के साथ भावना करें कि प्राणशक्ति का संरक्षण तथा सही योजना करने का उत्तरदायित्व हम पर आ रहा है। उसे हम साहस और प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करते हैं। उस दिशा में मिलने वाले हर विचार, सहयोग एवं भावना को हम सम्मान के साथ स्वीकार करते रहेगे। मेखला, कोपीन के साथ दैवी संस्कार का वरण हम कर रहे हैं। मन्त्र पूरा होने पर उसे कमर में स्वयं बाँध लें या खोंस लें। लँगोट पहनने का अभ्यास बनाने का आग्रह भी किया जाए।

ॐ इयं दुरुक्तं परिबाधमाना, वर्णं पवित्रं पुनतीम आगात् ।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना, स्वसादेवी सुभगा
मेखलेयम् ॥

-पार० गू० सू० २.२.८

॥ दण्ड धारण ॥

शिक्षण और प्रेरणा- आश्रमवासी ब्रह्मचारियों को दण्ड धारण कराया जाता था । उसके साथ अनेक स्थूल प्रेरणाएँ जुड़ी हैं । दैनिक उपयोग में कुते, साँप, बिच्छू आदि से रक्षा, पानी की थाह लेना, आक्रमणकारियों से आत्मरक्षा, अपनी शक्ति एवं साहसिकता का प्रदर्शन आदि इसके कितने ही छिटपुट लाभ हैं । शस्त्र सज्जा में लाठी सर्वसुलभ और अधिक विश्वस्त है । उसे साथ रखने से साहस बढ़ता है । लाठी चलाना एक बहुत ही उच्च स्तर का व्यायाम है । इससे देहबल तथा मनोबल भी बढ़ता है । लाठी चलाना हर धर्म प्रेमी को आना चाहिए; ताकि दुष्ट, आतताई और अधर्मियों के हौसले पस्त करने की सामर्थ्य दिखा सकें ।

अन्याय सहना अन्याय करने के समान ही पाप है । अन्याय करने वाला मरने के बाद नरक को जाता है और अन्याय सहने वाला इसी जन्म में हानि, अपमान, असुविधा, आघात आदि के कष्ट सहता है । इसलिए हर धर्मप्रेमी को अनीति का प्रबल विरोध करने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए । इस तत्परता का एक प्रतीक-उपकरण लाठी है । यज्ञोपवीत धारण करने का अर्थ है-पशुता का परित्याग एवं मानवता को अंगीकार करना । इस परिवर्तन की प्रक्रिया में यह तो होता ही है कि नर- पशुओं के रोष एवं असंतोष का निमित्त बनना पड़े । जहाँ सौ झूठे रहते हों, वहाँ एक सत्यवादी को सताया एवं तिरस्कृत किया जाता है । ऐसी सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए धैर्य, साहस एवं आत्मबल का एकत्रीकरण करना होता है, इस तैयारी को- इस बात को सदा स्मरण रखने के लिए दण्ड का विधान रखा गया है ।

लाठी आमतौर से बाँस की होती है । बाँस की अनेक गाँठें मिलकर पूरा दण्ड बनाती हैं । इसका प्रयोजन यह है कि अनेक व्यक्तियों के मिलजुल कर रहने से, संगठित होने से ही धर्मरक्षा की शक्ति का निर्माण होता है । संघ शक्ति ही इस युग में सर्वोपरि है । उसी के द्वारा धर्म-रक्षा एवं अधर्म का

प्रतिकार हो सकता है, धर्मात्मा व्यक्ति वैसे ही थोड़े हैं । इस पर भी वे असंगठित रहें, तो फिर उनके आदर्श अच्छे रहते हुए भी व्यवहार की दृष्टि से उन्हें बेवकूफ कहा जायेगा । बेवकूफ सदा पिटते रहते हैं । असंगठित धर्म प्रेमियों को यदि तिरस्कृत एवं असफल रहना पड़े, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं । खण्डों से मिलकर बना हुआ दण्ड हाथ में धारण करते समय यज्ञोपवीतधारी- आदर्शों को अपनाने वाले को यह ध्यान रखना पड़ता है कि उसे साहसी-शूरवीर ही नहीं, संगठन की उपयोगिता एवं आवश्यकता को भी समझना और स्वीकार करना है । अपने क्षेत्र के धर्म प्रेमियों को संगठित करने की बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए ।

क्रिया और भावना- दण्ड पर गायत्री मंत्र के साथ कलावा बाँध देना चाहिए । यह कार्य पहले से भी करके रखा जा सकता है और उसी समय भी किया जा सकता है । दण्ड मंत्र के साथ संस्कार कराने वालों को दिया जाए । वे उसे दोनों हाथों से लेकर मस्तक से लगाएँ । भावना करें कि अध्यात्म क्षेत्र के प्रखर अनुशासन को ग्रहण किया जा रहा है, इसके साथ देव शक्तियों द्वारा उसके अनुरूप प्रवृत्ति और शक्ति प्रदान की जा रही है ।

आचार्य निम्न मंत्र बोलते हुए ब्रह्मचारी को दण्ड प्रदान करें-

ॐ यो मे दण्डः परापतद्, वैहायसोऽधिभूम्याम् ।

तमहं पुनरादद आयुषे, ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ।

- पार० गू० सू० २.२.१२

॥ यज्ञोपवीत पूजन ॥

यज्ञोपवीत देव प्रतिमा है । उसकी स्थापना के पूर्व उसकी शुद्धि तथा उसमें प्राण-प्रतिष्ठा का उपक्रम किया जाता है । जनेऊ को सबसे प्रथम पवित्र करना चाहिए । उसे शुद्ध जल से सम्भव हो, तो गंगाजल से धोया जाए, ताकि अब तक उस पर पड़े हुए स्पर्श संस्कार दूर हो जाएँ । इसके बाद उसे दोनों हाथों के बीच रखकर १० बार गायत्री मन्त्र का मानसिक जप किया जाए । इतना करने से वह पवित्र एवं अभिमंत्रित हो जाता है । फिर हाथ में अक्षत, पुष्प लेकर यज्ञोपवीत पूजन का मंत्र बोला जाए । मंत्र पूरा होने पर अक्षत पुष्प उस पर चढ़ा दिये जाए । भावना की जाए कि सूत्र की बनी इस देव प्रतिमा

को शुद्ध एवं संस्कारवान् बनाकर उसमें सन्निहित देवत्व के प्रति अपनी भावना आस्था समर्पित की जा रही है।

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य, बृहस्पतिर्यज्ञमिमं

तनोत्विरिष्टं, यज्ञं समिमं दधातु।

विश्वे देवास ऽ इह मादयन्तामोऽम्प्रतिष्ठ। - २.१३

॥ पंच देवावाहन ॥

शिक्षण और प्रेरणा- ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यज्ञ और सूर्य-इन पाँचों देवताओं को पाँच दिव्य भावनाओं का प्रतीक माना गया है। ब्रह्मा अर्थात् आत्मबल, विष्णु अर्थात् समृद्धि, महेश अर्थात् व्यवस्था, यज्ञ अर्थात् परमार्थ, सूर्य अर्थात् पराक्रम- इन पाँचों गुणों को देवता मानकर हम यज्ञोपवीत के माध्यम से अपने हृदय और कलेजे पर धारण करें अर्थात् उन्हें अपनी आस्था एवं प्रकृति का अंग बनाएँ, तभी वास्तविक कल्याण का मार्ग मिलेगा। देवता भावनाओं के प्रतिबिम्ब होते हैं।

(१) **ब्रह्मा-** जीवन के भौतिक और आत्मिक दोनों ही पहलू सुविकसित होने चाहिए। हमें आत्मबल से सम्पन्न होने के लिए संयमी, सदाचारी, मधुरभाषी, शालीन, नेक, सज्जन, आस्तिक, सद्गुणी होना चाहिए, जिसका व्यक्तित्व-जीवन पवित्र एवं सद्भावना युक्त है, उसी का आत्मबल बढ़ता है। यज्ञोपवीत में आवाहित प्रथम ब्रह्मा को धारण करने का तात्पर्य इस मान्यता को हृदयंगम करना एवं उसके लिए प्रयत्नशील रहना ही है।

क्रिया और भावना- यज्ञोपवीत खोलकर उसे हाथ के दोनों अँगूठों में फैला लें, ताकि फिर से न उलझे। अब दोनों हाथों के सम्पुट में लें। मन्त्रोच्चार के साथ भावना करें कि आवाहित देवशक्ति का प्रवाह इस सूत्र में स्थापित हो रहा है। मन्त्र पूरा होने पर हाथों को मस्तक से लगाएँ।

ॐ ब्रह्मा जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्, विसीमतः सुरुचो वेनऽआवः।

सबुध्न्या ऽउपमा ऽ अस्य विष्ठाः, सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥

ॐ ब्रह्मणे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

(२) **विष्णु-** विष्णु लक्ष्मी के स्वामी हैं, हमें भी दीन, दरिद्र, हेय, परावलम्बी, गई-गुजरी स्थिति में नहीं पड़ा रहना चाहिए। स्वास्थ्य, शिक्षा, कुशलता आदि गुणों को बढ़ाना चाहिए, ताकि उसकी कीमत पर सुख साधनों को, समृद्धि को प्राप्त किया जा सके। समृद्धि उपलब्ध करने का सही मार्ग केवल एक ही है, अपनी सर्वाङ्गीण प्रतिभा एवं योग्यता को बढ़ाना। इस दिशा में जो जितना कर लेगा, उसे उस मूल्य पर आसानी से अधिक सुख-साधन मिल जायेंगे। समृद्धि को मनुष्य अपनी तथा दूसरों की सुविधा बढ़ाने में खर्च करे, तो उससे लोक एवं परलोक की सुख-शान्ति बढ़ेगी। यज्ञोपवीत में स्थापित विष्णु का यही सन्देश है।

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पा ऽं सुरे स्वाहा ॥ ॐ विष्णवे नमः।

आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि। - ५.१५

(३) **महेश-** महेश का अर्थ है- नियंत्रण, व्यवस्था, क्रमबद्धता, उचित का चुनाव। ब्रह्मा को उत्पादन का, विष्णु को पालन का और शिव को संहार का देवता माना गया है। संहार का अर्थ है- अनुपयोगिता एवं अनौचित्य का निवारण। हमारी आधी से अधिक शक्ति-सामर्थ्य अव्यवस्था एवं अनौचित्य को अपनाये रहने से नष्ट होती है, इसे बचाया जाना चाहिए। यज्ञोपवीत में शिव देवता का आवाहन इन्हीं मान्यताओं को हृदयंगम करने के लिए किया जाता है।

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवऽ, उतो तऽ इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः।

ॐ रुद्राय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ - १६.१

(४) **यज्ञ-** आत्मबल बढ़ाने के लिए एक अनिवार्य माध्यम परमार्थ है, यज्ञ इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। धार्मिक व्यक्ति वही है, जिसके जीवन में सेवा, उदारता, सहायता एवं परोपकार की वृत्ति फूट पड़ती है, जिसे सभी अपने लगते हैं, जिसे सभी से प्रेम है, वही सच्चा अध्यात्मवादी कहा जायेगा। उसे अनिवार्यतः अपनी आकांक्षाओं और गतिविधियों में परमार्थ को प्रधानता देनी ही होगी। ब्रह्मा और यज्ञ इन दो देवताओं की-वैयक्तिक जीवन की पवित्रता एवं लोक सेवा की प्रवृत्ति को अपनाने से आत्मिक बल बढ़ता है

और मनुष्यत्व से देवत्व की ओर प्रगति होती है ।

यज्ञोपवीत खोलकर कनिष्ठिका व अंगुष्ठ में फँसाकर यज्ञ भगवान् के सामने करें ।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

ॐ यज्ञपुरुषाय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ।

- ३१.१६

(५) सूर्य- सूर्य अर्थात् तेजस्विता, पराक्रम, श्रमशीलता । सूर्य की तरह हम निरंतर कार्य में संलग्न रहें, परिश्रम को अपना जीवन सहचर एवं गौरव का आधार मानें । आलस्य और प्रमाद को पास न फटकने दें । सदा जागरूक एवं चैतन्य रहें । पुरुषार्थी बनें । आत्महीनता एवं दीनता की भावना मन में न आने दें, तेजस्वी बनें । एक पैर से खड़े होकर पानी का लोटा सूर्य के सामने लुढ़का देने से नहीं, सूर्य की सच्ची उपासना उसकी प्रेरणाओं को अपनाने से होती है । यज्ञोपवीत को लिये हुए दोनों हाथ ऊपर उठाएँ, सूर्य भगवान् का ध्यान करें-

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो, निवेशयन्मृतं मर्त्यं च ।

हिरण्ययेन सविता रथेना, देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

ॐ सूर्याय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ।

- ३३.४३

॥ यज्ञोपवीत धारण ॥

शिक्षण और प्रेरणा- कोई भी वस्त्र-आभूषण हो, अपनी शोभा प्रतिष्ठा तब बढ़ाता है, जब उसे धारण किया जाए । यज्ञोपवीत प्रतीक को धारण करते हुए यह ध्यान रखा जाए कि यह सूत्र नहीं, इस माध्यम से जीवन में दिव्यता-आदर्शवादिता को धारण किया जा रहा है । इसे सहज ही धारण किया जाना चाहिए; क्योंकि इसके बिना मनुष्य में मनुष्यता का विकास सम्भव नहीं ।

क्रिया और भावना- पाँच यज्ञोपवीतधारी व्यक्ति मिलकर यज्ञोपवीत पहनाते हैं । भाव यह है कि इस दिशा में नया प्रयास, प्रवेश करने वाले को अनुभवियों का सहयोग एवं मार्गदर्शन मिलता रहे । पहनाने वाले जब यज्ञोपवीत पकड़ लें, तो धारण करने वाला उसे छोड़ दे । बायाँ हाथ नीचे कर ले और दाहिना हाथ ऊपर ही उठाये रहे । मन्त्र के साथ यज्ञोपवीत पहना दिया जाए । मन्दिर में प्रतिमा स्थापना जैसा दिव्य भाव बनाये रखें ।

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं, प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।

आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं, यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

- पार० गृ० सू० २.२.११

॥ सूर्य-दर्शन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- तदुपरान्त सूर्य दर्शन एवं सूर्य अर्घ्यदान की क्रिया है । संस्कारार्थी सूर्य भगवान् को देखता है और तीन अंजलि भर के उन्हें जल प्रदान करता है ।

सूर्य के समान तेजस्वी बनना, उष्णता धारण किये रहना, गतिशील रहना, लोक कल्याण के लिए जीवन समर्पित करना, अन्धकार रूपी अज्ञान दूर करना, अपने प्रकाश से दूसरों को प्रकाशित करना जैसी अनेक प्रेरणाएँ सूर्य दर्शन करते हुए ग्रहण की जाती हैं । सूर्य आगे बढ़ता चलता है, पर साथ में अपने अन्य ग्रह, उपग्रहों को भी घसीटता ले चलता है । यज्ञोपवीतधारी को स्वयं तो प्रगति के पथ पर आगे बढ़ना ही है, पर साथ ही यह भी ध्यान रखना है कि व्यक्तिगत उन्नति से ही सन्तोष न कर लिया जाए, अपने साथी समीपवर्ती लोगों को भी आगे बढ़ाते हुए साथ चलाने का प्रयत्न करना है । सूर्य उदय और अस्त में, लाभ और हानि में मनुष्य को सन्तुलित धैर्य युक्त एवं एक-सा रहना चाहिए । न तो सम्पत्ति से उन्मत्त हों और न विपत्ति में शोक सन्ताप से विक्षुब्ध हों । धूप-छाँव की तरह जीवन में प्रिय- अप्रिय परिस्थितियाँ आती-जाती रहती हैं । उन्हें हँसते-खेलते एवं क्रीड़ा-विनोद की तरह देखना चाहिए और शान्त- चित्त से अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर बिना एक क्षण भी उद्देगों में गँवाये, आगे बढ़ते रहना चाहिए । सूर्य के समान लोककल्याण के आयोजनों में पूरी अभिरुचि रखने की कार्य पद्धति अपनाने की योजना

बनानी चाहिए। भगवान् भास्कर अपनी किरणों द्वारा समुद्र के पानी को भाप बनाकर बादलों के रूप में परिणत करते हैं। बादलों से वर्षा होती है। उसी पर वृक्ष, वनस्पति, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी और मनुष्य का जीवन निर्भर है।

सूर्य किरणों की गर्मी निर्जीव प्रकृति को सजीव बनाती है। संसार में जितना जीवन तत्त्व है, वह सब सूर्य से ही आया है। इसलिए सूर्य को जगत् की आत्मा भी कहा गया है। हमें भी सूर्य के दर्शन करते हुए इसी रीति-नीति को अपनाना चाहिए और श्रद्धापूर्वक तीन बार अंजलि देते हुए शरीर, मन और धन से इन आदर्शों में तत्पर रहने की सहमति-स्वीकृति प्रकट करनी होती है।

क्रिया और भावना- मन्त्रोच्चार के साथ सूर्य नारायण का ध्यान करते हुए हाथ जोड़कर नमस्कार करें, भावना करें जगदात्मा सूर्य जिस प्रकार सारी प्रकृति को शक्ति देते हैं, वैसे ही उनका सूक्ष्म प्रवाह हमें भी मिल रहा है, हम उससे, धारण और नियोजन की सामर्थ्य पा रहे हैं।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं २४, शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः, स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात्॥ - ३६.२४

॥ त्रिपदा पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- गायत्री माता के तीन चरण कहे गये हैं। यज्ञोपवीत की तीन लड़ें उनकी प्रतीक हैं। उन्हें सूत्र रूप में गायत्री, सरस्वती और सावित्री शक्तियों के रूप में जाना जाता है। इनकी प्रतिनिधि धाराएँ क्रमशः श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा हैं। ये मनुष्य के कारण, सूक्ष्म और स्थूल कलेवरों को नियन्त्रित, विकसित करने वाली हैं। इन्हीं के सहारे देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋणों से मुक्त हुआ जा सकता है। इन्हें ही भक्ति, ज्ञान और कर्म की धाराओं की गङ्गा मानी जाती है। इनका मर्म समझने तथा अनुसरण करने के भाव से त्रिपदा पूजन के अन्तर्गत इन्हीं तीन शक्तियों का पूजन किया जाता है।

क्रिया और भावना- पूजन वेदी पर स्थापित चावल की तीन ढेरियों को गायत्री, सरस्वती एवं सावित्री का प्रतीक मानकर उनके मन्त्र बोलकर अक्षत, पुष्प उन पर चढ़ाएँ। भावना की जाए कि ऊँची सतह का

पानी निचली सतह पर आता है। इन शक्तियों के आगे उनका पूजन करके झुककर- उनके प्रवाह को हम प्राप्त कर रहे हैं। गायत्री पूजन के साथ श्रद्धा, सरस्वती के साथ प्रज्ञा और सावित्री के साथ निष्ठा सम्पदाओं के सम्बर्धन की भावना की जाए।

॥ गायत्री पूजन ॥

ॐ ता २४ सवितुर्वरेण्यस्य, चित्रामाऽहं वृणे सुमतिं विश्वजन्त्याम्। यामस्य कण्ठो अदुहत्प्रपीना २४ सहस्रधारां पयसा महीं गाम्। ॐ भूर्भुवः स्वः गायत्र्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि

- १७.७४

॥ सरस्वती पूजन ॥

ॐ पावका नः सरस्वती, वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः॥ ॐ भूर्भुवः स्वः सरस्वत्यै नमः। २०.८४
आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

॥ सावित्री पूजन ॥

ॐ सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या, वाचा त्वष्टा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे, बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाऽग्निना, तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना, दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि॥ ॐ भूर्भुवः स्वः सावित्र्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥

- १०.३०

॥ दीक्षा प्रकरण ॥

यज्ञोपवीत संस्कार के साथ दीक्षा अनिवार्य रूप से जुड़ी है। बहुत बार प्रतिनिधि रूप में आस्थावान् व्यक्तियों को भी दीक्षा देनी पड़ती है। दोनों ही प्रकरणों में दीक्षा के उद्देश्य, महत्त्व और मर्यादाओं पर उनका ध्यान दिला देना चाहिए।

महत्त्व और मर्यादाएँ- दीक्षा पाने के लिए व्यक्ति बहुधा सहज श्रद्धावश पहुँच जाते हैं। दीक्षा के पूर्व उन्हें इस कृत्य का महत्त्व और उसकी मर्यादाएँ समझा देनी चाहिए। उसके मुख्य सूत्र ये हैं-

(१) गुरुदीक्षा सामान्य कर्मकाण्ड नहीं, एक सूक्ष्म आध्यात्मिक प्रयोग है। उसके अन्तर्गत शिष्य अपनी श्रद्धा और संकल्प के सहारे गुरु के समर्थ व्यक्तित्व के साथ जुड़ता है। कर्मकाण्ड उस सूक्ष्म प्रक्रिया का एक अंग है।

(२) दीक्षा में समर्थ गुरु के विकसित प्राण का एक अंश शिष्य के अन्दर स्थापित किया जाता है। यह कार्य समर्थ गुरु ही कर सकता है। उन्हीं का प्राणानुदान दीक्षा लेने वालों को मिलता है, कर्मकाण्ड कराने वाला स्वयंसेवक मात्र होता है।

(३) व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से आगे बढ़ता है, यह उसी प्रकार ठीक है जैसे पौधा अपनी ही जड़ों से जीवित रहता है और बढ़ता है; किन्तु यह भी सत्य है कि वृक्ष की कलम सामान्य पौधे में बाँध देने पर उसके उत्पादन में भारी परिवर्तन हो जाता है। दीक्षा में साधक रूपी सामान्य पौधे पर गुरु रूपी श्रेष्ठ वृक्ष की टहनी प्राणानुदान के रूप में स्थापित की जाती है। साधक इसका अनुपम लाभ उठा सकता है।

(४) कलम बाँधना एक कार्य है। यह कार्य गुरु द्वारा किया जाता है। उसे रक्षित और विकसित करना दूसरा कार्य है, जिसके लिए शिष्य को पुरुषार्थ करना पड़ता है। दीक्षा लेने वालों को अपने इस दायित्व के प्रति जागरूक रहना चाहिए। इसके लिए गुरु के विचारों के सतत सान्निध्य में रहना आवश्यक है, मिशन की पत्रिकाओं से उनका मार्गदर्शन पाते रहना तथा तदनु रूप जीवन क्रम बनाने का प्रयास करना चाहिए।

(५) दीक्षा के बाद गुरु-शिष्य परस्पर पूरक बन जाते हैं। गुरु की शक्ति शिष्य के उत्कर्ष के लिए लगती रहती है; पर यह तभी सम्भव है, जब शिष्य की शक्ति गुरु के कार्य-लोक मंगल के लिए नियमित रूप से लगती रहे। इसे देवत्व की साझेदारी कहा जा सकता है। शिष्य को अपने समय, पुरुषार्थ, प्रभाव, ज्ञान एवं धन का एक अंश नियमित रूप से गुरु के कार्य के लिए लगाना होता है। यह क्रम चलता रहे, तो लगाई हुई कलम का फलित होना अवश्यम्भावी है।

क्रम व्यवस्था- यदि यज्ञोपवीत के साथ दीक्षा क्रम चलाना है, तो त्रिपदा पूजन के बाद गुरु पूजन-नमस्कार कराके दीक्षा दे दी जाए। यदि अलग से दीक्षा क्रम चलता है, तो नीचे लिखे क्रम से उपचार कराते हुए आगे बढ़ें।

(१) पहले षट्कर्म- पवित्रीकरण, आचमन, शिखावन्दन, प्राणायाम, न्यास एवं भूमि पूजन कराएँ। इसके साथ संक्षिप्त भावभरी सारगर्भित व्याख्याएँ की जाएँ।

(२) षट्कर्म के बाद देव पूजन एवं सर्वदेव नमस्कार कराएँ।

(३) नमस्कार के बाद हाथ में पुष्प, अक्षत, जल लेकर स्वस्तिवाचन कराया जाए। स्वस्तिवाचन के अक्षत, पुष्प एकत्रित करने के साथ ही नियुक्त स्वयं सेवकों द्वारा ही कलावा बाँधने एवं तिलक करने का क्रम चलाया जाए। उसके मन्त्र एवं व्याख्याएँ संचालक बोलते रहें।

यदि दीक्षा क्रम यज्ञ के साथ चल रहा है, तो उपर्युक्त में से जो उपचार पहले कराये जा चुके हैं, उन्हें पुनः कराना आवश्यक नहीं। उस स्थिति में गुरु पूजन करके ही दीक्षा दी जाए।

॥ गुरु पूजन ॥

जिस प्रकार भगवान् मूर्ति नहीं एक चेतना है, उसी प्रकार गुरु को व्यक्ति नहीं चेतना रूप मानना चाहिए। जो ईश्वर को मूर्तियों, चित्रों तक सीमित मानता, वह ईश्वरीय सत्ता का समुचित लाभ नहीं उठा सकता। इसी प्रकार जो गुरु को शरीर तक सीमित मानता है, वह गुरु सत्ता का लाभ नहीं उठा सकता। जिस प्रकार ईश्वर सर्वसमर्थ है; पर भक्त की मान्यता और भावना के अनुरूप ही प्रत्यक्ष फल देता है, वैसे ही गुरु भी शिष्य की आस्था के अनुरूप फलित होता है। यह ध्यान में रखकर गुरु वन्दना के साथ अन्तःकरण में गुरु चेतना के प्रकटीकरण होने की प्रार्थना की जानी चाहिए।

क्रिया और भावना- गुरु के प्रतीक चित्र पर मन्त्र के साथ अक्षत-पुष्प चढ़ाकर उनका पूजन करें। फिर हाथ जोड़कर भाव-भरी वन्दना करें। भावना करें कि उनकी कृपा से उन्हें चेतना रूप में समझने, अपनाने की क्षमता का विकास हो रहा है।

ॐ बृहस्पते ऽअति यदयो, अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
 यद्दीदयच्छवसऽ ऋतप्रजात, तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ।
 उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये, त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ।
 ॐ श्री गुरवे नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि । ततो
 नमस्कारं करोमि । - २६.३, तै० सं० १.८.२२.३, ऋ० २.२३.१५

ॐ वन्दे बोधमयं नित्यं, गुरुं शंकररूपिणम् ।
 यमाश्रितो हि वक्रोऽपि, चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥
 अज्ञानतिमिरान्धस्य, ज्ञानांजनशलाकया ।
 चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
 नमोऽस्तु गुरवे तस्मै, गायत्रीरूपिणे सदा ।
 यस्य वागमृतं हन्ति, विषं संसारसंज्ञकम् ॥
 मातृवत् लालयित्री च, पितृवत् मार्गदर्शिका ।
 नमोऽस्तु गुरुसत्तायै, श्रद्धाप्रज्ञायुता च या ॥

॥ मन्त्र दीक्षा ॥

शिक्षण और प्रेरणा- गायत्री मन्त्र सहज रूप से एक छन्द है, प्रार्थना है । गुरु जब उसके साथ अपने तप, पुण्य और प्राण को जोड़ देता है, तो वह मन्त्र बन जाता है । यह सब देने की सामर्थ्य जिसमें न हो, वह दीक्षा देने का प्रयास करे, तो निरर्थक रूप से पातक का भागी बनता है । स्वयंसेवक भाव से गुरु की ही चेतना का प्रवाह दीक्षित व्यक्ति से जोड़ने में अपनी सद्भावना का प्रयोग करना उचित है ।

क्रिया और भावना- अब साधकों को सावधान होकर बैठने को कहें । कमर सीधी, हाथ की अँगुलियाँ परस्पर फँसाकर हाथ के अँगूठों को सीधा रखते हुए परस्पर मिलाएँ । अँगूठे के नाखूनों पर साधक अपनी दृष्टि टिकाएँ । यह स्थिति मन्त्र दीक्षा चलने तक बनी रहे । कहीं इधर-उधर न देखें । मन्त्र दीक्षा के बाद जब सिंचन हो जाए, तब दृष्टि हटाएँ और हाथ खोलें । उपरोक्त मुद्रा बनाने के बाद दीक्षा कर्मकाण्ड कराने वाला स्वयंसेवक गुरु का ध्यान करते हुए गायत्री मन्त्र का एक- एक शब्द अलग-अलग करके

बोले । दीक्षा लेने वाले उसे दुहराते चलें । इस क्रम से पाँच बार गायत्री मन्त्र दुहराया जाए ।

भावना की जाए 'गुरु की दिव्य सामर्थ्य, उनके तप, पुण्य और प्राण का अंश मन्त्राक्षरों के साथ साधक के अन्दर प्रविष्ट- स्थापित हो रहा है । उपयुक्त मनोभूमि में वह फलित होकर ही रहेगा ।'

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ - ३६.३

॥ सिंचन- अभिषेक ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- वृक्ष, बीज या कलम आरोपित करने के बाद उसमें पानी दिया जाता है । पानी उसके अनुरूप होना चाहिए अन्यथा तेल, साबुन, तेजाबयुक्त पानी पौधे को नष्ट करेगा । गुरु के अनुदानों को दिव्य रस- श्रेष्ठ कर्मों तथा उनके द्वारा निर्दिष्ट अनुशासनों के पालन में उल्लास की अनुभूति से सींचा जाता है । पेड़ लगे, फले- फूले यह भाव सींचने का है । अभिषेक राजाओं, योद्धाओं, सत्पुरुषों का किया जाता है । दीक्षा लेकर नया श्रेष्ठ जीवन प्रारम्भ किये जाने का अभिनन्दन करते हुए अभिषेक किया जाता है ।

क्रिया और भावना- कुछ स्वयंसेवक कलश लें । आम के पत्ते, कुश या पुष्प द्वारा मन्त्र के साथ जल के छींटे दीक्षितों पर लगाएँ । भावना की जाए कि सिंचन के साथ दैवी शक्तियों, स्नेहियों के सद्भावों की वर्षा हो रही है, साधकों की साधना फलीभूत होने की स्थिति बन रही है ।

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः, तानऽऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे । ॐ यो वः शिवतमो रसः, तस्य भाजयतेह नः ।
 उशतीरिव मातरः । ॐ तस्मा ऽअरं गमाम वो, यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपोजनयथा च नः ॥ - ३६.१४-१६, ११.५०-५२

यदि केवल दीक्षा क्रम अलग से चल रहा है, तो सिंचन के बाद गुरु दक्षिणा संकल्प कराएँ । यज्ञोपवीत के साथ दीक्षा है, तो यज्ञोपवीत के शेष कर्म पूरे करा कर संकल्प कराएँ ।

॥ भिक्षाचरण ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- गुरु दक्षिणा द्वारा साधक अपने विकास की सुनिश्चित मर्यादा घोषित करता है। सदुद्देश्य के लिए अपना अंशदान देता है; परन्तु बात यहीं समाप्त नहीं होती। सत्कार्यों में अपने योगदान के लिए औरों के योगदान भी जोड़ने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसके लिए देने की स्थिति और इच्छा जिनमें है, उनसे लेकर उसे सत्कार्यों में लगाना परम पुनीत कार्य माना जाता है। भिक्षा की परम्परा इसी दृष्टि से श्रेष्ठ मानी जाती थी। शिष्य इस परिपाटी के पालन का साहस करे। अपने अहं को गलाकर जन सहयोग एकत्रित करके गुरुकार्य में लगाए। इसी भाव से यज्ञोपवीत के साथ भिक्षा चरण का क्रम भी जुड़ा रहता है।

क्रिया और भावना- शिष्य दुपट्टे की झोली बनाकर भिक्षा माँगे। पहले माँ के पास जाए, कहे “भवति भिक्षां देहि”, फिर पिता के पास जाकर कहे “भवान् भिक्षां देहि”। फिर इसी प्रकार कहता हुआ अपने कुटुम्बियों महिलाओं- पुरुषों से याचना करे, जो मिले उसे गुरु के सम्मुख अर्पित कर दे। भिक्षा देने वालों के हाथों में अक्षत दे दिये जाएँ। अपनी इच्छा से वे कुछ द्रव्य डालना चाहें, तो डाल सकते हैं।

‘भवति- भिक्षां देहि’ (महिलाओं से) और ‘भवान् भिक्षां देहि’ (पुरुषों से) कहते हुए भिक्षा पूरी करके उपलब्ध सामान गुरु के सम्मुख चढ़ा दिया जाता है।

॥ वेद पूजन- अध्ययन ॥

वेदों का सार गायत्री है। गायत्री को ही वेदमाता, वेदबीज या वेदमूल कहते हैं। वेदमाता गायत्री के निर्देशों के अनुरूप, जीवन निर्माण की अपनी आस्था के प्रतीक रूप में वेद भगवान् का पूजन किया जाता है।

क्रिया और भावना - हाथ में पुष्प-अक्षत लेकर वेदों का प्रतीक पूजन किया जाए। फिर नीचे दिये प्रत्येक वेद के एक-एक मन्त्र बुलवाये जाएँ। आचार्य कहे, दीक्षित व्यक्ति दुहराएँ।

ॐ वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः। देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत ऽइमं देव यज्ञं स्वाहा वाते धाः॥ ॐ वेदपुरुषाय नमः।
आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि। -२.२१

॥ वेदाध्ययन ॥

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ -ऋ० १.१.१

ॐ इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ आप्यायध्व मध्न्याऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ऽईशत माघशं सो ध्रुवाऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि॥ -१.१

ॐ अग्न आ याहि वीतये गृणानोहव्य दातये। निहोता सत्सि बर्हिषि॥ -साम० १.१.१

ॐ ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वारूपाणि बिभ्रतः।

वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वोऽ अद्य दधातु मे॥ -अथर्व० १.१.१

॥ विशेष - आहुति ॥

इसके बाद अग्नि स्थापन से लेकर गायत्री मन्त्र की आहुतियों तक के उपचार पूरे करें। स्विष्टकृत् आहुति के पूर्व विशेष आहुतियाँ प्रदान करें।

शिक्षण एवं प्रेरणा - यज्ञोपवीत व्रतबन्ध है। व्रतशील तेजस्वी जीवन जीने का आरम्भ यहाँ से किया जाता है। इस व्रतशीलता के लिए पाँच व्रतपति देवताओं के नाम की आहुतियाँ डालते हैं। ये देव शक्तियाँ हैं-अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र और इन्द्र। अग्नि से ऊष्मा, प्रकाश, ऊँचे उठना, सबको अपने जैसा बनाना तथा प्राप्त को वितरित करके अपने लिए कुछ शेष न रखना आदि प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं।

वायु से सतत गतिशीलता, जीवों की प्राण रक्षा के लिए स्वयं उन तक

पहुँचना, सहज उपलब्ध रहना, बादल, सुगन्धि जैसी सत्त्ववृत्तियों के प्रसार-वितरण का माध्यम बनने की प्रेरणाएँ उभरती हैं।

सूर्य से प्रकाश, नियमितता, सतत चलते रहना, बिना भेद-भाव सब तक अपनी किरणें पहुँचाने जैसा श्रेष्ठ शिक्षण प्राप्त होता है।

चन्द्र स्वप्रकाशित नहीं, फिर भी प्रकाश देता है। स्वयं सूर्यताप सहकर शीतल प्रकाश फैलाता है-ऐसी सत्त्ववृत्तियों के प्रतीक चन्द्रदेव से प्रेरणाएँ प्राप्त करते हैं।

इन्द्र देवत्व के संगठक हैं। बिखराव से ही देवत्व का पराभव होता है, देववृत्तियों के एकीकरण तथा हजार नेत्रों से सतत जागरूकता की प्रेरणा इन्द्रदेव से प्राप्त होती है।

क्रिया और भावना - मन्त्र के साथ आहुतियाँ दें। प्रत्येक आहुति के साथ भावना करें कि इस देवशक्ति के पोषण के लिए यह हमारा योगदान है। वह हमें संरक्षण और मार्गदर्शन देंगे। यह वृत्तियाँ उनके आशीर्वाद से हमें मिल रही हैं, जिससे हमारा कल्याण होता है।

ॐ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।

तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा।

इदं अग्नये इदं न मम।

ॐ वायो व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।

तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा।

इदं वायवे इदं न मम।

ॐ सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।

तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा।

इदं सूर्याय इदं न मम।

ॐ चन्द्र व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।

तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा।

इदं चन्द्राय इदं न मम।

ॐ व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।

तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा।

इदं इन्द्राय व्रतपतये इदं न मम। - म० ब्रा० १.६.९-१३

॥ वैश्वानर-नमस्कार ॥

हाथ जोड़कर अग्निदेव को नमस्कार करें। भावना करें कि यज्ञाग्नि जिसके सान्निध्य से देवत्व मिलता है, उसके प्रति हम श्रद्धा प्रकट कर रहे हैं।

ॐ वैश्वानरो नऽऊतयऽआ प्र यातु परावतः। अग्निर्नः सुष्टुतीरुप। ॐ वैश्वानराय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

- १८.७२

इसके बाद पूर्णाहुति आदि कृत्य कराए जाएँ। विसर्जन के पूर्व गुरु दक्षिणा संकल्प कराएँ।

॥ गुरु दक्षिणा संकल्प ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - दीक्षा के साथ व्रतशीलता की शर्त जुड़ी है। व्रत कहते हैं सुनिश्चित लक्ष्य के लिए सुनिश्चित साधना-क्रम बनाना। जो व्रतशील नहीं, वह जीवन के ढर्रे को बदल नहीं सकता। उसे बदले बिना दीक्षा फलित नहीं होती। यह ढर्रा बदलने के लिए गुरु दक्षिणा दी जाती है। अपने समय, प्रभाव, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश गुरु के निर्देशानुसार खर्च करने का संकल्प ही गुरु दक्षिणा में किया जाता है। इसके लिए न्यूनतम पच्चीस पैसे से एक रुपया तक तथा दो घण्टे का समय प्रतिदिन निकालना चाहिए। इससे अधिक करने की जिनकी स्थिति हो, वे महीने में एक दिन का वेतन दे सकते हैं। दीक्षा लेने वालों के संकल्प पत्र पहले से भरवा लेने चाहिए। संकल्प के साथ संकल्प पत्र में ऊपरी बातों का स्मरण किया जाता है।

गुरु, दीक्षा के साथ अपनी शक्ति देता है, शिष्य दक्षिणा देकर अपनी पात्रता, प्रामाणिकता सिद्ध करता है। दीक्षा आहार प्रदान करने जैसा है। दक्षिणा उसे पचाने की क्रिया है। दीक्षा कलम लगाने जैसी प्रक्रिया है, दक्षिणा जड़ों का रस उस कलम तक पहुँचाकर उसे विकसित फलित करने का उपक्रम है।

क्रिया और भावना - साधकों के हाथ में अक्षत, पुष्प देकर दक्षिणा संकल्प बोला जाए। भावना की जाए इस दिव्य आदान-प्रदान द्वारा गुरु शिष्य का व्यक्तित्व मिलकर एक नया व्यक्तित्व बन रहा है।

संकल्प- गोत्र और नाम तक यथावत् क्रम से बोला जाए। आगे जोड़ा जाए-
.....श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त-फलप्राप्त्यर्थं मम कायिक- वाचिक मानसिक ज्ञाताज्ञात- सकलदोषनिवारणार्थं, आत्मकल्याण-लोककल्याणार्थं, गायत्री महाविद्यायां श्रद्धापूर्वकं दीक्षितो भवामि। तन्निमित्तकं युगऋषि वेदमूर्ति तपोनिष्ठ परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्येण, वन्दनीया माता भगवती देवी शर्मणा च निर्धारितानि अनुशासनानि स्वीकृत्य, तयोः प्राण-तपः- पुण्यांशं स्वान्तःकरणे दधामि, तत्साधयितुं च समय-प्रतिभा-साधनानां एकांशं नवनिर्माणकार्येषु प्रयोक्तुम् गुरु-दक्षिणायाः संकल्पं अहं करिष्ये।

संकल्प बोले जाने के बाद अपने व्रतों की घोषणा सहित संकल्प-पत्र, दक्षिणा, फल आदि गुरुदेव के प्रतीक के आगे चढ़वाये जाएँ। आचार्य की भूमिका निभा रहे स्वयंसेवक या कोई वरिष्ठ साधक कार्यकर्ता उन्हें तिलक करे। दीक्षित व्यक्ति सबको नमस्कार प्रणाम करे, सभी लोग उन पर शुभकामना, आशीर्वाद के अक्षत-पुष्प छोड़ें। जयघोष आदि के साथ संस्कार क्रम समाप्त किया जाए।

* * *

॥ विवाह-संस्कार ॥

संस्कार प्रयोजन- विवाह दो आत्माओं का पवित्र बन्धन है। दो प्राणी अपने अलग-अलग अस्तित्वों को समाप्त कर एक सम्मिलित इकाई का निर्माण करते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों में परमात्मा ने कुछ विशेषताएँ और कुछ अपूर्णताएँ दे रखी हैं। विवाह सम्मिलन से एक-दूसरे की अपूर्णताओं को अपनी विशेषताओं से पूर्ण करते हैं, इससे समग्र व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसलिए विवाह को सामान्यतया मानव जीवन की एक आवश्यकता माना गया है। एक-दूसरे को अपनी योग्यताओं और भावनाओं का लाभ पहुँचाते हुए गाड़ी में लगे हुए दो पहियों की तरह प्रगति-पथ पर अग्रसर होते जाना विवाह का उद्देश्य है। वासना का दाम्पत्य-जीवन में अत्यन्त तुच्छ और गौण स्थान है, प्रधानतः दो आत्माओं के मिलने से उत्पन्न होने वाली उस महती शक्ति का निर्माण करना है, जो दोनों के लौकिक एवं आध्यात्मिक जीवन के विकास में सहायक सिद्ध हो सके।

विवाह का स्वरूप- आज विवाह वासना- प्रधान बनते चले जा रहे हैं। रंग, रूप एवं वेष- विन्यास के आकर्षण को पति-पत्नी के चुनाव में प्रधानता दी जाने लगी है, यह प्रवृत्ति बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है। यदि लोग इसी तरह सोचते रहे, तो दाम्पत्य-जीवन शरीर प्रधान रहने से एक प्रकार के वैध-व्यभिचार का ही रूप धारण कर लेगा। पाश्चात्य जैसी स्थिति भारत में भी आ जायेगी। शारीरिक आकर्षण की न्यूनाधिकता का अवसर सामने आने पर विवाह जल्दी-जल्दी टूटते- बनते रहेंगे। अभी पत्नी का चुनाव शारीरिक आकर्षण को ध्यान में रखकर किये जाने की प्रथा चली है, थोड़े ही दिनों में इसकी प्रतिक्रिया पति के चुनाव में भी सामने आयेगी। तब असुन्दर पतियों को कोई पत्नी पसन्द न करेगी और उन्हें दाम्पत्य सुख से वंचित ही रहना पड़ेगा। समय रहते इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति को रोका जाना चाहिए और शारीरिक आकर्षण की उपेक्षा कर सद्गुणों तथा सद्भावनाओं को ही विवाह का आधार पूर्वकाल की तरह बने रहने देना चाहिए। शरीर का नहीं आत्मा का सौन्दर्य देखा जाए और साथी में जो कमी है, उसे प्रेम, सहिष्णुता, आत्मीयता एवं विश्वास की छाया में जितना सम्भव हो सके, सुधारना

चाहिए, जो सुधार न हो सके, उसे बिना असन्तोष लाये सहन करना चाहिए। इस रीति-नीति पर दाम्पत्य जीवन की सफलता निर्भर है। अतएव पति-पत्नी को एक-दूसरे से आकर्षण लाभ मिलने की बात न सोचकर एक-दूसरे के प्रति आत्म समर्पण करने और सम्मिलित शक्ति उत्पन्न करने, उसके जीवन विकास की सम्भावनाएँ उत्पन्न करने की बात सोचनी चाहिए।

चुनाव करते समय तक साथी को पसन्द करने न करने की छूट है। जो कुछ देखना, ढूँढ़ना, परखना हो, वह कार्य विवाह से पूर्व ही समाप्त कर लेना चाहिए। जब विवाह हो गया, तो फिर यह कहने की गुंजायश नहीं रहती कि भूल हो गई, इसलिए साथी की उपेक्षा की जाए। जिस प्रकार के भी गुण-दोष युक्त साथी के साथ विवाह बन्धन में बँधें, उसे अपनी ओर से कर्तव्यपालन समझकर पूरा करना ही एक मात्र मार्ग रह जाता है। इसी के लिए विवाह संस्कार का आयोजन किया जाता है।

समाज के सम्भ्रान्त व्यक्तियों की, गुरुजनों की, कुटुम्बी-सम्बन्धियों की, देवताओं की उपस्थिति इसीलिए इस धर्मानुष्ठान के अवसर पर आवश्यक मानी जाती है कि दोनों में से कोई इस कर्तव्य-बन्धन की उपेक्षा करे, तो उसे रोके और प्रताड़ित करें। पति-पत्नी इन संभ्रान्त व्यक्तियों के सम्मुख अपने निश्चय की, प्रतिज्ञा-बन्धन की घोषणा करते हैं। यह प्रतिज्ञा समारोह ही विवाह संस्कार है। इस अवसर पर दोनों को ही यह भावनाएँ गहराई तक अपने मन में जमानी चाहिए कि वे पृथक् व्यक्तित्वों की सत्ता समाप्त कर एकीकरण की आत्मीयता में विकसित होते हैं। कोई किसी पर न तो हुकूमत जमायेगा और न अपने अधीन-वशवर्ती रखकर अपने लाभ या अहंकार की पूर्ति करना चाहेगा। वरन् वह करेगा, जिससे साथी को सुविधा मिलती हो। दोनों अपनी इच्छा-आवश्यकता को गौण और साथी की आवश्यकता को मुख्य मान कर सेवा और सहायता का भाव रखेंगे, उदारता एवं सहिष्णुता बरतेंगे, तभी गृहस्थी का रथ ठीक तरह आगे बढ़ेगा।

इस तथ्य को दोनों भली प्रकार हृदयंगम कर लें और इसी रीति-नीति को आजीवन अपनाये रहने का व्रत धारण करें, इसी प्रयोजन के लिए यह पुण्य-संस्कार आयोजित किया जाता है। इस बात को दोनों भली प्रकार समझ लें और सच्चे मन से स्वीकार कर लें, तो ही विवाह-बन्धन में बँधें। विवाह

संस्कार आरम्भ करने से पूर्व या विवाह वेदी पर बिठाकर दोनों को यह तथ्य भली प्रकार समझा दिया जाए और उनकी सहमति माँगी जाए। यदि दोनों इन आदर्शों को अपनाये रहने की हार्दिक सहमति-स्वीकृति दें, तो ही विवाह संस्कार आगे बढ़ाया जाए।

विशेष व्यवस्था- विवाह संस्कार में देव पूजन, यज्ञ आदि से सम्बन्धित सभी व्यवस्थाएँ पहले से बनाकर रखनी चाहिए। सामूहिक विवाह हो, तो प्रत्येक जोड़े के हिसाब से प्रत्येक वेदी पर आवश्यक सामग्री रहनी चाहिए, कर्मकाण्ड ठीक से होते चले, इसके लिए प्रत्येक वेदी पर एक-एक जानकार व्यक्ति भी नियुक्त करना चाहिए। एक ही विवाह है, तो आचार्य स्वयं ही देख-रेख रख सकते हैं। सामान्य व्यवस्था के साथ जिन वस्तुओं की जरूरत विशेष कर्मकाण्ड में पड़ती है, उन पर प्रारम्भ में दृष्टि डाल लेनी चाहिए। उसके सूत्र इस प्रकार हैं।

* वर सत्कार के लिए सामग्री के साथ एक थाली रहे; ताकि हाथ, पैर धोने की क्रिया में जल फैले नहीं। मधुपर्क पान के बाद हाथ धुलाकर उसे हटा दिया जाए।

* यज्ञोपवीत के लिए पीला रंगा हुआ यज्ञोपवीत एक जोड़ा रखा जाए।

* विवाह घोषणा के लिए वर-वधू पक्ष की पूरी जानकारी पहले से ही नोट कर ली जाए।

* वस्त्रोपहार तथा पुष्पोपहार के वस्त्र एवं मालायें तैयार रहें।

* कन्यादान में हाथ पीले करने की हल्दी, गुप्तदान के लिए गुँधा हुआ आटा (लगभग एक पाव) रखें।

* ग्रन्थिबन्धन के लिए हल्दी, पुष्प, अक्षत, दूर्वा और द्रव्य हों।

* शिलारोहण के लिए पत्थर की शिला या समतल पत्थर का एक टुकड़ा रखा जाए।

* हवन सामग्री के अतिरिक्त लाजा (धान की खिलें) रखनी चाहिए।

* वर-वधू के पद प्रक्षालन के लिए परात या थाली रखी जाए।

* वर-वधू को आशीर्वाद के लिए पुष्प आदि पर्याप्त रखे जाएँ।

* पहले से वातावरण ऐसा बनाना चाहिए कि संस्कार के समय वर और कन्या पक्ष के अधिक से अधिक परिजन, स्नेही उपस्थित रहें।

* सबके भाव संयोग से कर्मकाण्ड के उद्देश्य में रचनात्मक सहयोग मिलता है। इसके लिए व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही ढंग से आग्रह किए जा सकते हैं।

* विवाह के पूर्व यज्ञोपवीत संस्कार हो चुकता है। अविवाहितों को एक यज्ञोपवीत तथा विवाहितों को जोड़ा पहनाने का नियम है।

* यदि यज्ञोपवीत न हुआ हो, तो नया यज्ञोपवीत और हो गया हो, तो एक के स्थान पर जोड़ा पहनाने का संस्कार विधिवत् किया जाना चाहिए। अच्छा हो कि जिस शुभ दिन को विवाह-संस्कार होना है, उस दिन प्रातःकाल यज्ञोपवीत धारण का क्रम व्यवस्थित ढंग से करा दिया जाए। विवाह-संस्कार के लिए सजे हुए वर के वस्त्र आदि उतरवाकर यज्ञोपवीत पहनाना अटपटा-सा लगता है। इसलिए उसको पहले ही पूरा कर लिया जाए। यदि वह सम्भव न हो, तो स्वागत के बाद यज्ञोपवीत धारण करा दिया जाता है। उसे वस्त्रों पर ही पहना देना चाहिए, जो संस्कार के बाद अन्दर कर लिया जाता है।

* जहाँ पारिवारिक स्तर के परम्परागत विवाह आयोजनों में मुख्य संस्कार से पूर्व द्वारचार (द्वार पूजा) की रस्म होती है, वहाँ यदि हो-हल्ला के वातावरण को संस्कार के उपयुक्त बनाना सम्भव लगे, तो स्वागत तथा वस्त्र एवं पुष्पोपहार वाले प्रकरण उस समय भी पूरे कराये जा सकते हैं। विशेष आसन पर बिठाकर वर का सत्कार किया जाए। फिर कन्या को बुलाकर परस्पर वस्त्र और पुष्पोपहार सम्पन्न कराये जाएँ। परम्परागत ढंग से दिए जाने वाले अभिनन्दन-पत्र आदि भी उसी अवसर पर दिये जा सकते हैं। इसके कर्मकाण्ड का संकेत आगे किया गया है।

* पारिवारिक स्तर पर सम्पन्न किये जाने वाले विवाह संस्कारों के समय कई बार वर-कन्या पक्ष वाले किन्हीं लौकिक रीतियों के लिए आग्रह करते हैं। यदि ऐसा आग्रह है, तो पहले से नोट कर लेना-समझ लेना चाहिए। कर्मकाण्ड के मुख्य प्रवाह में उसे कुशलता से फिट कर देना चाहिए। पारिवारिक स्तर पर विवाह-प्रकरणों में वरेच्छा, तिलक (शादी पक्की करना) हरिद्रा लेपन (हल्दी चढ़ाना) तथा द्वारपूजन आदि के आग्रह उभरते हैं। उन्हें संक्षेप में दिया जा रहा है; ताकि समयानुसार उनका निर्वाह किया जा सके।

॥ पूर्व विधान ॥

॥ वर-वरण (तिलक) ॥

विवाह से पूर्व 'तिलक' का संक्षिप्त विधान इस प्रकार है - वर पूर्वाभिमुख तथा तिलक करने वाले (पिता, भाई आदि) पश्चिमाभिमुख बैठकर निम्नकृत्य सम्पन्न करें - मंगलाचरण, षट्कर्म, तिलक, कलावा, कलशपूजन, गुरुवन्दना, गौरी-गणेश पूजन, सर्वदेव नमस्कार, स्वस्तिवाचन आदि इसके बाद कन्यादाता वर का यथोचित स्वागत-सत्कार (पैर धुलाना, आचमन कराना तथा हल्दी से तिलक करके अक्षत लगाना) करें। तदुपरान्त 'वर' को प्रदान की जाने वाली समस्त सामग्री (थाल-थान, फल-फूल, द्रव्य-वस्त्रादि) कन्यादाता हाथ में लेकर संकल्प मन्त्र बोलते हुए वर को प्रदान कर दें -

॥ संकल्प ॥

.....(कन्यादाता) नामाऽहं... (कन्या-नाम) नाम्या कन्यायाः (भगिन्याः) करिष्यमाण उद्वाहकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैः.... (वर का गोत्र) गोत्रोत्पन्नं(वर का नाम) नामानं वरं कन्यादानार्थं वरपूजनपूर्वकं त्वामहं वृणे, तन्निमित्तकं यथाशक्ति भाण्डानि, वस्त्राणि, फलमिष्टान्नानि द्रव्याणि च ... (वर का नाम) वराय समर्पये।

तत्पश्चात् क्षमाप्रार्थना, नमस्कार, विसर्जन तथा शान्तिपाठ करते हुए कार्यक्रम समाप्त करें।

॥ हरिद्रालेपन ॥

विवाह से पूर्व वर-कन्या के प्रायः हल्दी चढ़ाने का प्रचलन है, उसका संक्षिप्त विधान इस प्रकार है - सर्वप्रथम षट्कर्म, तिलक, कलावा, कलशपूजन, गुरुवन्दना, गौरी-गणेश पूजन, सर्वदेवनमस्कार, स्वस्तिवाचन करें। तत्पश्चात् निम्न मन्त्र बोलते हुए वर/कन्या की हथेली - अंग-अवयवों में (लोक रीति के अनुसार) हरिद्रालेपन करे -

ॐ काण्डात् काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि ।

एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च ॥ - १३.२०

इसके बाद वर के दाहिने हाथ में तथा कन्या के बायें हाथ में रक्षा सूत्र-कंकण (पीले वस्त्र में कौड़ी, लोहे की अँगूठी, पीली सरसों, पीला अक्षत आदि बाँधकर बनाया गया ।) निम्नलिखित मन्त्र से पहनाएँ -

ॐ यदाबध्नाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तन्मऽआबध्नामि शतशारदाय, आयुष्माञ्जरदष्ट्रियथासम् ॥

३४५२

तत्पश्चात् क्षमाप्रार्थना, नमस्कार विसर्जन, शान्तिपाठ के साथ कार्यक्रम पूर्ण करें ।

॥ द्वारपूजा ॥

विवाह हेतु बरात जब द्वार पर आती है, तो सर्वप्रथम 'वर' का स्वागत-सत्कार किया जाता है, जिसका क्रम इस प्रकार है - 'वर' के द्वार पर आते ही आरती की प्रथा हो, तो कन्या की माता आरती कर लें । तत्पश्चात् 'वर' और कन्यादाता परस्पर अभिमुख बैठकर षट्कर्म, कलावा, तिलक, कलशपूजन, गुरुवन्दना, गौरी-गणेश पूजन, सर्वदेवनमस्कार स्वस्तिवाचन करें । इसके बाद कन्यादाता वर सत्कार के सभी कृत्य आसन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क आदि (विवाह संस्कार से) सम्पन्न कराएँ ।

तत्पश्चात् 'ॐ' गन्धद्वारा दुग्धार्घ्य..... (पृ० ११३) से तिलक लगाएँ तथा ॐ अक्षन्नमीमदन्त..... (पृ० ११२) से अक्षत लगाएँ । माल्यार्पण एवं कुछ द्रव्य 'वर' को प्रदान करना हो, तो निम्नस्थ मंत्रों से सम्पन्न करा दें -

माल्यार्पण मन्त्र - ॐ मंगलं भगवान् विष्णुः पृ० ४६

द्रव्यदान मन्त्र - ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे पृ० ११७

तत्पश्चात् क्षमाप्रार्थना, नमस्कार, देवविसर्जन एवं शान्तिपाठ करें ।

*

॥ विवाह संस्कार-विशेष कर्मकाण्ड ॥

विवाह वेदी पर वर और कन्या दोनों को बुलाया जाए, प्रवेश के साथ मंगलाचरण "भद्रं कर्णेभिः....." मन्त्र बोलते हुए उन पर पुष्पाक्षत डाले जाएँ । कन्या दाँयों ओर तथा वर बायों ओर बैठे । कन्यादान करने वाले प्रतिनिधि कन्या के पिता, भाई जो भी हों, उन्हें पत्नी सहित कन्या की ओर बिठाया जाए । पत्नी दाहिने और पति बायों ओर बैठें । सभी के सामने आचमनी, पंचपात्र आदि उपकरण हों । पवित्रीकरण, आचमन, शिखा-वन्दन, प्राणायाम, न्यास, पृथ्वी-पूजन आदि षट्कर्म सम्पन्न करा लिये जाएँ ।

वर-सत्कार- (अलग से द्वार पूजा में वर सत्कार कृत्य हो चुका हो, तो दुबारा करने की आवश्यकता नहीं है ।) अतिथि रूप में आये हुए वर का सत्कार किया जाए । (१) आसन (२) पाद्य (३) अर्घ्य (४) आचमन (५) नैवेद्य आदि निर्धारित मन्त्रों से समर्पित किए जाएँ ।

दिशा और प्रेरणा- वर का अतिथि के नाते सत्कार किया जाता है । गृहस्थाश्रम में गृहलक्ष्मी का महत्त्व सर्वोपरि होता है । उसे लेने वर एवं उसके हितैषी परिजन कन्या के पिता के पास चल कर आते हैं । श्रेष्ठ उद्देश्य से सद्भावनापूर्वक आये अतिथियों का स्वागत करना कन्या पक्ष का कर्तव्य हो जाता है । दोनों पक्षों को अपने-अपने इन सद्भावों को जाग्रत् रखना चाहिए ।

* वर का अर्थ होता है- श्रेष्ठ, स्वीकार करने योग्य । कन्या-पक्ष वर को अपनी कन्या के अनुरूप श्रेष्ठ व्यक्ति मानकर ही सम्बन्ध स्वीकार करें, उसी भाव से श्रेष्ठ भाव रखते हुए सत्कार करें और भगवान् से प्रार्थना करें कि यह भाव सदा बनाये रखने में सहायता करें ।

* वर पक्ष सम्मान पाकर निरर्थक अहं न बढ़ाएँ । जिन मानवीय गुणों के कारण श्रेष्ठ मानकर वर का सत्कार करने की व्यवस्था ऋषियों ने बनाई है, उन शालीनता, जिम्मेदारी, आत्मीयता, सहकारिता जैसे गुणों को इतना जीवन्त बनाकर रखें कि कन्या पक्ष की सहज श्रद्धा उसके प्रति उमड़ती ही रहे । ऐसा सम्भव हो, तो पारिवारिक सम्बन्धों में देवोपम स्नेह-मधुरता का संचार अवश्य होगा ।

* इन दिव्य भावों के लिए सबसे अधिक घातक है, संकीर्ण स्वार्थपरक

लेन-देन का आग्रह । दहेज, चढ़ावा आदि के नाम पर यदि एक-दूसरे पर दबाव डाले जाते हैं, तो सद्भावना तो समाप्त हो ही जाती है, द्वेष और प्रतिशोध के दुर्भाव उभर आते हैं । वर-वधू के सुखद भविष्य को ध्यान में रखकर ऐसे अप्रिय प्रसंगों को विष मानकर उनसे सर्वथा दूर रहना चाहिए । ध्यान रखें कि सत्कार में स्थूल उपचारों को नहीं हृदयगत भावों को प्रधान माना जाता है । उन्हीं के साथ निर्धारित क्रम पूरा किया - कराया जाए ।

क्रिया और भावना- स्वागतकर्त्ता हाथ में अक्षत लेकर भावना करें कि वर की श्रेष्ठतम प्रवृत्तियों का अर्चन कर रहे हैं । देव-शक्तियाँ उन्हें बढ़ाने-बनाये रखने में सहयोग करें । निम्न मन्त्र बोलें—

ॐ साधु भवान् आस्ताम्, अर्चयिष्यामो भवन्तम् । - पार० गृ० सू० १.३.४

वर दाहिने हाथ में अक्षत स्वीकार करते हुए भावना करें कि स्वागत कर्त्ता की श्रद्धा पाते रहने के योग्य व्यक्तित्व बनाये रखने का उत्तरदायित्व स्वीकार कर रहे हैं । बोलें—“**ॐ अर्चय**” ।

आसन- स्वागतकर्त्ता आसन या उसका प्रतीक (कुश या पुष्प आदि) हाथ में लेकर निम्न मन्त्र बोलें । भावना करें कि वर को श्रेष्ठता का आधार-स्तर प्राप्त हो । हमारे स्नेह में उसका स्थान बने ।

ॐ विष्टरो, विष्टरो, विष्टरः, प्रतिगृह्यताम् । - पार० गृ० सू० १.३.६

वर कन्या के पिता के हाथ से विष्टर (कुश या पुष्प आदि) लेकर कहें—

“**ॐ प्रतिगृह्णामि**” - पार० गृ० सू० १.३.७

उसे बिछाकर बैठ जाए, इस क्रिया के साथ निम्न मन्त्र बोला जाए—

ॐ वर्षोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः ।

इमन्तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति ॥ - पार० गृ० सू० १.३.८

पाद्य- स्वागतकर्त्ता पैर धोने के लिए छोटे पात्र में जल लें । भावना करें कि ऋषियों के आदर्शों के अनुरूप सद्गृहस्थ बनने की दिशा में बढ़ने वाले पैर पूजनीय हैं । कन्यादाता कहे—

ॐ पाद्यं, पाद्यं, पाद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ - पार० गृ० सू० १.३.६

वर कहे -

‘ॐ प्रतिगृह्णामि’ ॥ - पार० गृ० सू० - १.३.७

भावना करें कि आदर्शों की दिशा में चरण बढ़ाने की उमंग इष्टदेव बनाये रखें । पद प्रक्षालन की क्रिया के साथ यह मन्त्र बोला जाए ।

ॐ विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि,

पाद्यायै विराजो दोहः ॥

- पार० गृ० सू० १.३.१२

अर्घ्य- स्वागतकर्त्ता चन्दन युक्त सुगन्धित जल पात्र में लेकर भावना करें कि सत्पुरुषार्थ में लगने का संस्कार वर के हाथों में जाग्रत् करने हेतु अर्घ्य दे रहे हैं । कन्यादाता कहे—

ॐ अर्घो, अर्घो, अर्घः प्रतिगृह्यताम् । - पार० गृ० सू० १.३.६

जल पात्र स्वीकार करते हुए वर कहे—

ॐ प्रतिगृह्णामि ।

- पार० गृ० सू० १.३.७

भावना करें कि सुगन्धित जल सत्पुरुषार्थ के संस्कार दे रहा है । जल से हाथ धोएँ । क्रिया के साथ निम्न मन्त्र बोला जाए ।

ॐ आपःस्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्रवानि ।

ॐ समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत ।

अरिष्टाअस्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः । पार० गृ० सू० १.३.१३-१४

आचमन- स्वागतकर्त्ता आचमन के लिए जल पात्र प्रस्तुत करें । भावना करें वर-श्रेष्ठ अतिथि का मुख उज्ज्वल रहे, उसकी वाणी उसका व्यक्तित्व तदनुरूप बने । कन्यादाता कहे—

ॐ आचमनीयम्, आचमनीयम्, आचमनीयम् प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ प्रतिगृह्णामि । (वर कहे)

- पार० गृ० सू० १.३.६

भावना करें कि मन, बुद्धि और अन्तःकरण तक यह भाव बिठाने का प्रयास कर रहे हैं । तीन बार आचमन करें । यह मन्त्र बोला जाए ।

ॐ आमागन् यशसा स ऽथ सृज वर्चसा । तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् । - पार० गृ० सू० १.३.१५

नैवेद्य-मधुपर्क- एक पात्र में दूध, दही, शर्करा (मधु) और तुलसीदल डाल कर रखें । स्वागतकर्त्ता वह पात्र हाथ में लें । भावना करें कि वर की श्रेष्ठता बनाये रखने योग्य सात्त्विक, सुसंस्कारी और स्वास्थ्यवर्धक आहार उन्हें सतत प्राप्त होता रहे । कन्यादाता कहे—

ॐ मधुपर्को, मधुपर्को, मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् ।- पाठ० गृ० सू० १.३.६
वर पात्र स्वीकार करते हुए कहे- ॐ प्रतिगृह्णामि ।

वर मधुपर्क का पान करे । भावना करें अभक्ष्य के कुसंस्कारों से बचने, सत्पदार्थों से सुसंस्कार अर्जित करते रहने का उत्तरदायित्व स्वीकार रहे हैं । पान करते समय यह मंत्र बोला जाए ।

ॐ यन्मधुनो मधव्यं परमं ११ रूपमन्नाद्यम् । तेनाहं मधुनो
मधव्येन परमेण, रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ।

-पाठ० गृ० १.३.२०

तत्पश्चात् जल से वर हाथ-मुख धोए । स्वच्छ होकर अगले क्रम के लिए बैठे । इसके बाद चन्दन धारण कराएँ । यदि यज्ञोपवीत धारण पहले नहीं कराया गया है, तो यज्ञोपवीत प्रकरण के आधार पर संक्षेप में उसे सम्पन्न कराया जाए । इसके बाद क्रमशः कलशपूजन, नमस्कार, षोडशोपचार पूजन, स्वस्तिवाचन, रक्षाविधान आदि सामान्य क्रम करा लिये जाएँ । रक्षा-विधान के बाद संस्कार का विशेष प्रकरण चालू किया जाए ।

विवाह घोषणा- विवाह घोषणा की एक छोटी-सी संस्कृत भाषा की शब्दावली है, जिसमें वर-कन्या के गोत्र पिता-पितामह आदि का उल्लेख और घोषणा है कि यह दोनों अब विवाह सम्बन्ध में आबद्ध होते हैं । इनका साहचर्य धर्म-संगत जन साधारण की जानकारी में घोषित किया हुआ माना जाए । बिना घोषणा के गुपचुप चलने वाले दाम्पत्य स्तर के प्रेम संबंध, नैतिक, धार्मिक एवं कानूनी दृष्टि से अवांछनीय माने गये हैं । जिनके बीच दाम्पत्य सम्बन्ध हो, उसकी घोषणा सर्वसाधारण के समक्ष की जानी चाहिए । समाज की जानकारी से जो छिपाया जा रहा हो, वही व्यभिचार है । घोषणापूर्वक विवाह सम्बन्ध में आबद्ध होकर वर-कन्या धर्म परम्परा का पालन करते हैं । स्वस्ति श्रीमन्नन्दनन्दन चरणकमल भक्ति सद् विद्या विनीतनिजकुलकमलकलिकाप्रकाशनैकभास्कर सदाचार सच्चरित्र सत्कुल सत्प्रतिष्ठा गरिष्ठस्य.... गोत्रस्य.... महोदयस्य प्रपौत्रः महोदयस्य पौत्रः..... महोदयस्य पुत्रः ॥

.....महोदयस्य प्रपौत्री, ... महोदयस्य पौत्री.....महोदयस्य पुत्री
प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये । स्वस्ति संवादेषूभयोर्वृद्धिर्वर-
कन्ययोश्चिरंजीविनौ भूयास्ताम् ॥

॥ मंगलाष्टक ॥

विवाह घोषणा के बाद, सस्वर मंगलाष्टक मन्त्र बोले जाएँ । इन मन्त्रों में सभी श्रेष्ठ शक्तियों से मंगलमय वातावरण, मंगलमय भविष्य के निर्माण की प्रार्थना की जाती है । पाठ के समय सभी लोग भावनापूर्वक वर-वधू के लिए मंगल कामना करते रहें । एक स्वयं सेवक उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा करते रहें ।

श्रीमत्पंकजविष्टरो हरिहरौ, वायुर्महेन्द्रोऽनलः,
चन्द्रो भास्कर वित्तपाल वरुण, प्रेताधिपादिग्रहाः ।
प्रद्युम्नो नलकूबरौ सुरगजः, चिन्तामणिः कौस्तुभः,
स्वामी शक्तिधरश्च लांगलधरः, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥१॥
गंगा गोमतिगोपतिर्गणपतिः, गोविन्दगोवर्धनौ,
गीता गोमयगोरजौ गिरिसुता, गंगाधरो गौतमः ।
गायत्री गरुडो गदाधरगया, गम्भीरगोदावरी,
गन्धर्वग्रहगोपगोकुलधराः, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥२॥
नेत्राणां त्रितयं महत्पशुपतेः, अग्नेस्तु पादत्रयं,
तत्तद्विष्णुपदत्रयं त्रिभुवने, ख्यातं च रामत्रयम् ।
गंगावाहपथत्रयं सुविमलं, वेदत्रयं ब्राह्मणम्,
संध्यानां त्रितयं द्विजैरभिमतं, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥३॥
वाल्मीकिः सनकः सनन्दनमुनिः, व्यासोवसिष्ठो भृगुः
जाबालिर्जमदग्निरत्रिजनकौ, गर्गोऽगिरा गौतमः ।
मान्धाता भरतो नृपश्च सगरो, धन्यो दिलीपो नलः,
पुण्यो धर्मसुतो ययातिनहुषौ, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥४॥

गौरी श्रीकुलदेवता च सुभगा, कद्रूसुपर्णाशिवाः,
सावित्री च सरस्वती च सुरभिः, सत्यवतारुन्धती ।
स्वाहा जाम्बवती च रुक्मभगिनी, दुःस्वप्नविध्वंसिनी,
वेला चाम्बुनिधेः समीनमकरा, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥५॥
गंगा सिन्धु सरस्वती च यमुना, गोदावरी नर्मदा,
कावेरी सरयू महेन्द्रतनया, चर्मण्वती वेदिका ।
शिप्रा वेत्रवती महासुरनदी, ख्याता च या गण्डकी,
पूर्णाः पुण्यजलैः समुद्रसहिताः, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥६॥
लक्ष्मीः कौस्तुभपारिजातकसुरा, धन्वन्तरिश्चन्द्रमा,
गावः कामदुघाः सुरेश्वरगजो, रम्भादिदेवांगनाः ।
अश्वः सप्तमुखः सुधा हरिधनुः, शंखो विषं चाम्बुधे,
रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥७॥
ब्रह्मा वेदपतिः शिवः पशुपतिः, सूर्यो ग्रहाणां पतिः
शक्रो देवपतिर्नलो नरपतिः, स्कन्दश्च सेनापतिः ।
विष्णुर्यज्ञपतिर्यमः पितृपतिः, तारापतिश्चन्द्रमा,
इत्येते पतयस्सुपर्णसहिताः, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥८॥

॥ परस्पर उपहार ॥

वस्त्रोपहार- वर पक्ष की ओर से कन्या को और कन्या पक्ष की ओर से वर को वस्त्र-आभूषण भेंट किये जाने की परम्परा है। यह कार्य श्रद्धानुरूप पहले ही हो जाता है। वर-वधू उन्हें पहनकर ही संस्कार में बैठते हैं। यहाँ प्रतीक रूप में पीले दुपट्टे एक-दूसरे को भेंट किये जाएँ। यही ग्रन्थि बन्धन के भी काम आ जाते हैं। आभूषण पहिनाना हो, तो अँगूठी या मंगलसूत्र जैसे शुभ चिह्नों तक ही सीमित रहना चाहिए।

दोनों पक्ष भावना करें एक-दूसरे का सम्मान बढ़ाने, उन्हें अलंकृत करने का उत्तरदायित्व समझने और निभाने के लिए संकल्पित हो रहे हैं। नीचे लिखे मन्त्र के साथ परस्पर उपहार दिये जाएँ।

ॐ परिधास्यै यशोधास्यै, दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि ।
शतं च जीवामि शरदः, पुरुचीरायस्पोषमभि संव्ययिष्ये ॥

- पार० गृ० सू० २६.२०

पुष्पोपहार (माल्यार्पण) - वर-वधू एक-दूसरे को अपने अनुरूप स्वीकार करते हुए, पुष्प मालाएँ अर्पित करते हैं। हृदय से वरण करते हैं। भावना करें कि देव शक्तियों और सत्पुरुषों के आशीर्वाद से वे परस्पर एक दूसरे के गले के हार बनकर रहेंगे। मन्त्रोच्चार के साथ पहले कन्या वर को फिर वर-कन्या को माला पहिनाएँ।

ॐ यशसा माद्यावापृथिवी यशसेन्द्रा बृहस्पती । यशो भगश्च मा
विदद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ।- पार० गृ० सू० २६.२१, मा० गृ० सू० १९.२७

॥ हस्तपीतकरण ॥

शिक्षा एवं प्रेरणा- कन्यादान करने वाले कन्या के हाथों में हल्दी लगाते हैं। हरिद्रा मंगल सूचक है। अब तक बालिका के रूप में यह लड़की रही। अब यह गृहलक्ष्मी का उत्तरदायित्व वहन करेगी, इसलिए उसके हाथों को पीतवर्ण-मंगलमय बनाया जाता है। उसके माता-पिता ने लाड़-प्यार से पाला, उसके हाथों में कोई कठोर कर्तव्य नहीं सौंपा। अब उसे अपने हाथों को नव-निर्माण के अनेक उत्तरदायित्व सँभालने को तैयार करना है, अतएव उन्हें पीतवर्ण मांगलिक-लक्ष्मी का प्रतीक-सृजनात्मक होना चाहिए। पीले हाथ करते हुए कन्या परिवार के लोग उस बालिका को यही मौन शिक्षण देते हैं कि उसे आगे सृजन शक्ति के रूप में प्रकट होना है और इसके लिए इन कोमल हाथों को अधिक उत्तरदायी, मजबूत और मांगलिक बनाना है।

क्रिया एवं भावना- कन्या दोनों हथेलियाँ सामने कर दे। कन्यादाता गीली हल्दी उस पर मन्त्र के साथ मलें। भावना करें कि देव सान्निध्य में इन हाथों को स्वार्थपरता के कुसंस्कारों से मुक्त कराते हुए त्याग-परमार्थ के संस्कार जाग्रत किये जा रहे हैं।

ॐ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेति परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमा ॐ सं परिपातु
विश्वतः ॥

- २९.५१

॥ कन्यादान-गुप्तदान ॥

शिक्षा एवं प्रेरणा- कन्यादान के समय कुछ अंशदान देने की प्रथा है। आटे की लोई में छिपाकर कुछ धन कन्यादान के समय दिया जाता है। दहेज का यही स्वरूप है। बच्ची के घर से विदा होते समय उसके अभिभावक किसी आवश्यकता के समय काम आने के लिए उपहार स्वरूप कुछ धन देते हैं, पर होता वह गुप्त ही है। अभिभावक और कन्या के बीच का यह निजी उपहार है। दूसरों को इसके सम्बन्ध में जानने या पूछने की कोई आवश्यकता नहीं। दहेज के रूप में क्या दिया जाना चाहिए, इस सम्बन्ध में ससुराल वालों को कहने या पूछने का कोई अधिकार नहीं। न उसके प्रदर्शन की आवश्यकता है; क्योंकि गरीब-अमीर अपनी स्थिति के अनुसार जो दे, वह चर्चा का विषय नहीं बनना चाहिए, उसके साथ निन्दा-प्रशंसा नहीं जुड़नी चाहिए। एक-दूसरे का अनुकरण करने लगे, प्रतिस्पर्धा पर उतर आएँ तो इससे अनर्थ ही होगा। कन्या-पक्ष पर अनुचित दबाव पड़ेगा और वर-पक्ष अधिक न मिलने पर अप्रसन्न होने की धृष्टता करने लगेगा। इसलिए कन्यादान के साथ कुछ धनदान का विधान तो है, पर दूरदर्शी ऋषियों ने लोगों की स्वार्थपरता एवं दुष्टता की सम्भावना को ध्यान में रखते हुए यह नियम बना दिया है कि जो कुछ भी दहेज दिया जाए वह सर्वथा गुप्त हो, उस पर किसी को चर्चा करने का अधिकार न हो। आटे में साधारणतया एक रुपया इस दहेज प्रतीक के लिए पर्याप्त है। यह धातु का लिया जाए और आटे के गोले के भीतर छिपाकर रखा जाए।

कन्यादान का अर्थ है- अभिभावकों के उत्तरदायित्वों का वर के ऊपर, ससुराल वालों के ऊपर स्थानान्तरण होना। अब तक माता-पिता कन्या के भरण-पोषण, विकास, सुरक्षा, सुख-शान्ति, आनन्द-उल्लास आदि का प्रबन्ध करते थे, अब वह प्रबन्ध वर और उसके कुटुम्बियों को करना होगा। कन्या नये घर में जाकर विरानेपन का अनुभव न करने पाये, उसे स्नेह, सहयोग, सद्भाव की कमी अनुभव न हो, इसका पूरा ध्यान रखना होगा। कन्यादान स्वीकार करते समय—पाणिग्रहण की जिम्मेदारी स्वीकार करते समय, वर तथा उसके अभिभावकों को यह बात भली प्रकार अनुभव कर लेनी चाहिए कि उन्हें उस उत्तरदायित्व को पूरी जिम्मेदारी के साथ निबाहना है।

कन्यादान का अर्थ यह नहीं कि जिस प्रकार कोई सम्पत्ति, किसी को बेची या दान कर दी जाती है, उसी प्रकार लड़की को भी एक सम्पत्ति समझकर किसी न किसी को चाहे जो उपयोग करने के लिये दे दिया है। हर मनुष्य की एक स्वतन्त्र सत्ता एवं स्थिति है। कोई मनुष्य किसी मनुष्य को बेच या दान नहीं कर सकता। फिर चाहे वह पिता ही क्यों न हो। व्यक्ति के स्वतन्त्र अस्तित्व एवं अधिकार से इनकार नहीं किया जा सकता, न उसे चुनौती दी जा सकती है। लड़की हो या लड़का अभिभावकों को यह अधिकार नहीं कि वे उन्हें बेचें या दान करें। ऐसा करना तो बच्चे के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के तथ्य को ही झूठलाना हो जाएगा। विवाह उभयपक्षीय समझौता है, जिसे वर और वधू दोनों ही पूरी ईमानदारी और निष्ठा के साथ निर्वाह कर सफल बनाते हैं। यदि कोई किसी को खरीदी या बेची सम्पत्ति के रूप में देखें और उस पर पशुओं जैसा स्वामित्व अनुभव करें या व्यवहार करें, तो यह मानवता के मूलभूत अधिकारों का हनन करना ही होगा। कन्यादान का यह तात्पर्य कदापि नहीं, उसका प्रयोजन इतना ही है कि कन्या के अभिभावक बालिका के जीवन को सुव्यवस्थित, सुविकसित एवं सुख-शान्तिमय बनाने की जिम्मेदारी को वर तथा उसके अभिभावकों पर छोड़ते हैं, जिसे उन्हें मनोयोगपूर्वक निबाहना चाहिए। पराये घर में पहुँचने पर कच्ची उम्र की अनुभवहीन भावुक बालिका को अखरने वाली मनोदशा में होकर गुजरना पड़ता है। इसलिए इस आरम्भिक सन्धिवेला में तो विशेष रूप से वर पक्ष वालों को यह प्रयास करना चाहिए कि हर दृष्टि से वधू को अधिक स्नेह, सहयोग मिलता रहे। कन्या पक्ष वालों को भी यह नहीं सोच लेना चाहिए कि लड़की के पीले हाथ कर दिये, कन्यादान हो गया, अब तो उन्हें कुछ भी करना या सोचना नहीं है। उन्हें भी लड़की के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में योगदान देते रहना है।

क्रिया और भावना- कन्या के हाथ हल्दी से पीले करके माता-पिता अपने हाथ में कन्या के हाथ, गुप्तदान का धन और पुष्प रखकर संकल्प बोलते हैं और उन हाथों को वर के हाथों में सौंप देते हैं। वह इन हाथों को गंभीरता और जिम्मेदारी के साथ अपने हाथों में पकड़कर स्वीकार-शिरोधार्य करता है।

भावना करें कि कन्या वर को सौंपते हुए उसके अभिभावक अपने समय अधिकार भी सौंपते हैं। कन्या के कुल गोत्र अब पितृ परम्परा से नहीं, पति परम्परा के अनुसार होंगे। कन्या को यह भावनात्मक पुरुषार्थ करने तथा पति को उसे स्वीकार करने या निभाने की शक्ति देवशक्तियाँ प्रदान कर रही हैं। इस भावना के साथ कन्यादान का संकल्प बोला जाए। संकल्प पूरा होने पर संकल्पकर्ता कन्या के हाथ वर के हाथ में सौंप दें।

॥ कन्यादान-संकल्प ॥

अद्येति.....नामाहं.....नाम्नीम् इमां कन्यां / भगिनीं सुस्नातां,
यथाशक्ति अलंकृतां, गन्धादि - अर्चितां, वस्त्रयुगच्छन्नां,
प्रजापति दैवत्यां, शतगुणीकृत, ज्योतिष्टोम-अतिरात्र-शतफल-
प्राप्तिकामोऽहं..... नाम्ने, विष्णुरूपिणे वराय, भरण-पोषण-
आच्छादन-पालनादीनां, स्वकीय उत्तरदायित्व- भारम्, अखिलं
अद्य तव पत्नीत्वेन, तुभ्यं अहं सम्प्रददे।

वर उन्हें स्वीकार करते हुए कहे-ॐ स्वस्ति।

॥ गोदान ॥

दिशा प्रेरणा- गौ पवित्रता और परमार्थ परायणता की प्रतीक है। कन्या पक्ष वर को ऐसा दान दे, जो उन्हें पवित्रता और परमार्थ की प्रेरणा देने वाला हो। सम्भव हो, तो कन्यादान के अवसर पर गाय दहेज में दी जा सकती है। वह कन्या के व उसके परिवार के लोगों के स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयुक्त भी है। आज की स्थिति में यदि गौ देना या लेना असुविधाजनक हो, तो उसके लिए कुछ धन देकर गोदान की परिपाटी को जीवित रखा जा सकता है।

क्रिया और भावना- कन्यादान करने वाले हाथ में सामग्री लें। भावना करें कि वर-कन्या के भावी जीवन को सुखी समुन्नत बनाने के लिए श्रद्धापूर्वक श्रेष्ठ दान कर रहे हैं। मन्त्रोच्चार के साथ सामग्री वर के हाथ में दें।

ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदिति वधिष्ट॥

- ऋ० ८.१०.१.१५ पार० गृ० सू० १.३.२७

॥ मर्यादाकरण ॥

दिशा एवं प्रेरणा- कन्यादान-गोदान के बाद कन्यादाता वर से सत् पुरुषों और देव शक्तियों की साक्षी में मर्यादा की विनम्र अपील करता है। वर उसे स्वीकार करता है। कन्या का उत्तरदायित्व वर को सौंपा गया है। ऋषियों द्वारा निर्धारित अनुशासन विशेष लक्ष्य के लिए हैं। अधिकार पाकर उस मर्यादा को भूलकर मनमाना आचरण न किया जाए। धर्म, अर्थ और काम की दिशा में ऋषि प्रणीत मर्यादा का उल्लंघन अधिकार के नशे में न किया जाए। यह निवेदन किया जाता है, जिसे वर प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता है।

क्रिया और भावना- कन्या दान करने वाले अपने हाथ में जल, पुष्प, अक्षत लें। भावना करें कि वर को मर्यादा सौंप रहे हैं। वर मर्यादा स्वीकार करे, उसके पालन के लिए देव शक्तियों के सहयोग की कामना करे।

नीचे लिखे मन्त्रों के साथ क्रिया सम्पन्न की जाए। कन्यादाता कहे-

ॐ गौरीं कन्यामिमां पूज्य ! यथाशक्तिविभूषिताम्।
गोत्राय शर्मणे तुभ्यं, दत्तां देव समाश्रय॥
धर्मस्याचरणं सम्यक्, क्रियतामनया सह।
धर्मे चार्थे च कामे च यत्त्वं नातिचरेर्विभो॥

वर कहे-“ नातिचरामि।”

॥ पाणिग्रहण ॥

दिशा एवं प्रेरणा- वर द्वारा मर्यादा स्वीकारोक्ति के बाद कन्या अपना हाथ वर के हाथ में सौंपे और वर अपना हाथ कन्या के हाथ में सौंप दे। इस प्रकार दोनों एक दूसरे का पाणिग्रहण करते हैं। यह क्रिया हाथ से हाथ मिलाने जैसी होती है। मानों एक दूसरे को पकड़ कर सहारा दे रहे हों। कन्यादान की तरह यह वर-दान की क्रिया तो नहीं होती, फिर भी उस अवसर पर वर की भावना भी ठीक वैसी होनी चाहिए जैसी कि कन्या को अपना हाथ सौंपते समय होती है। वर भी यह अनुभव करे कि उसने अपने व्यक्तित्व का अपनी इच्छा, आकांक्षा एवं गतिविधियों के संचालन का केन्द्र इस वधू को बना दिया और अपना हाथ भी सौंप दिया। दोनों एक-दूसरे को आगे बढ़ाने के

लिए एक-दूसरे का हाथ जब भावनापूर्वक समाज के सम्मुख पकड़ लें, तो समझना चाहिए कि विवाह का प्रयोजन पूरा हो गया।

क्रिया एवं भावना- नीचे लिखे मन्त्र के साथ कन्या अपना हाथ वर की ओर बढ़ाये, वर उसे अँगूठा सहित (समग्र रूप से) पकड़ ले। भावना करें कि दिव्य वातावरण में परस्पर मित्रता के भाव सहित एक-दूसरे के उत्तरदायित्व स्वीकार कर रहे हैं।

ॐ यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा।

हिरण्यपर्णो वै कर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु असौ ॥

- पार० गृ० सू० १.४.१५

॥ ग्रन्थिबन्धन ॥

दिशा और प्रेरणा- वर-वधू द्वारा पाणिग्रहण एकीकरण के बाद समाज द्वारा दोनों को एक गाँठ में बाँध दिया जाता है। दुपट्टे के छोर बाँधने का अर्थ है- दोनों के शरीर और मन से एक संयुक्त इकाई के रूप में एक नई सत्ता का आविर्भाव होना। अब दोनों एक-दूसरे के साथ पूरी तरह बँधे हुए हैं। ग्रन्थिबन्धन में धन, पुष्प, दूर्वा, हरिद्रा और अक्षत यह पाँच चीजें भी बाँधते हैं। पैसा इसलिए रखा जाता है कि धन पर किसी एक का अधिकार नहीं रहेगा। जो कमाई या सम्पत्ति होगी, उस पर दोनों का संयुक्त अधिकार होगा। खर्च करने में दोनों की सहमति से योजना एवं व्यवस्था बनेगी। दूर्वा का अर्थ है- कभी निर्जीव न होने वाली प्रेम भावना। दूर्वा का जीवन तत्त्व नष्ट नहीं होता, सूख जाने पर भी वह पानी डालने पर हरी हो जाती है। इसी प्रकार दोनों के मन में एक-दूसरे के लिए अजस्र प्रेम और आत्मीयता बनी रहे। चन्द्र-चकोर की तरह एक-दूसरे पर अपने को न्यौछावर करते रहें। अपना कष्ट कम और साथी का कष्ट बढ़कर मानें, अपने सुख की अपेक्षा साथी के सुख का अधिक ध्यान रखें। अपना आन्तरिक प्रेम एक-दूसरे पर उड़ेलते रहें। हरिद्रा का अर्थ है- आरोग्य, एक-दूसरे के शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य को सुविकसित करने का प्रयत्न करें। ऐसा व्यवहार न करें, जिससे साथी का स्वास्थ्य खराब होता हो या मानसिक उद्वेग पैदा होता हो। अक्षत, सामूहिक-सामाजिक विविध-विध उत्तरदायित्वों का स्मरण कराता है।

कुटुम्ब में कितने ही व्यक्ति होते हैं। उन सबका समुचित ध्यान रखना,

सभी को सँभालना संयुक्त पति-पत्नी का परम पावन कर्तव्य है। ऐसा न हो कि एक-दूसरे को तो प्रेम करें, पर परिवार के लोगों की उपेक्षा करने लगें। इसी प्रकार परिवार से बाहर भी जन-मानस के सेवा की जिम्मेदारी हर भावनाशील मनुष्य पर रहती है। ऐसा न हो कि दो में से कोई किसी को अपने व्यक्तिगत स्वार्थ-सहयोग तक ही सीमित कर ले, उसे समाज सेवा की सुविधा न दे। इस दिशा में लगने वाले समय व धन का विरोध करे। अक्षत इसी का संकेत करता है कि आप दोनों एक-दूसरे के लिए ही नहीं बने हैं, वरन् समाजसेवा का व्रत एवं उत्तरदायित्व भी आप लोगों के ग्रन्थिबन्धन में एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य के रूप में विद्यमान है। पुष्प का अर्थ है, हँसते-खिलते रहना। एक-दूसरे को सुगन्धित बनाने के लिए-यश फैलाने और प्रशंसा करने के लिए तत्पर रहें। कोई किसी का दूसरे के आगे न तो अपमान करे और न तिरस्कार। इस प्रकार दूर्वा, पुष्प, हरिद्रा, अक्षत और पैसा इन पाँचों को रखकर दोनों का ग्रन्थिबन्धन किया जाता है और यह आशा की जाती है कि वे जिन लक्ष्यों के साथ आपस में बँधे हैं, उन्हें आजीवन निरन्तर स्मरण रखे रहेंगे।

क्रिया और भावना- ग्रन्थिबन्धन, आचार्य या प्रतिनिधि या कोई मान्य व्यक्ति करें। दुपट्टे के छोर एक साथ करके उसमें मंगल-द्रव्य रखकर गाँठ बाँध दी जाए। भावना की जाए कि मंगल-द्रव्यों के मंगल-संस्कार सहित देवशक्तियों के समर्थन तथा स्नेहियों की सद्भावना के संयुक्त प्रभाव से दोनों इस प्रकार जुड़ रहे हैं, जो सदा जुड़े रहकर एक-दूसरे की जीवन लक्ष्य यात्रा में पूरक बनकर चलेंगे—

ॐ समंजन्तु विश्वेदेवाः, समापो हृदयानि नौ।

सं मातरिश्वा सं धाता, समुदेष्ट्री दधातु नौ ॥

- ऋ० १०.८५.४७; पार० गृ० सू० १.४.१४

॥ वर-वधू की प्रतिज्ञाएँ ॥

दिशा एवं प्रेरणा- किसी भी महत्त्वपूर्ण पद ग्रहण के साथ शपथ ग्रहण समारोह भी अनिवार्य रूप से जुड़ा रहता है। कन्यादान, पाणिग्रहण एवं ग्रन्थि-बन्धन हो जाने के साथ वर-वधू द्वारा और समाज द्वारा दाम्पत्य सूत्र में बँधने की स्वीकारोक्ति हो जाती है। इसके बाद अग्नि एवं देव-

शक्तियों की साक्षी में दोनों को एक संयुक्त इकाई के रूप में ढालने का क्रम चलता है। इस बीच उन्हें अपने कर्तव्य धर्म का महत्त्व भली प्रकार समझना और उसके पालन का संकल्प लेना चाहिए। इस दिशा में पहली जिम्मेदारी वर की होती है। अस्तु, पहले वर तथा बाद में वधू को प्रतिज्ञाएँ कराई जाती हैं।

क्रिया और भावना- वर-वधू स्वयं प्रतिज्ञाएँ पढ़ें, यदि संभव न हो तो आचार्य एक-एक करके प्रतिज्ञाएँ व्याख्या सहित समझाएँ।

॥ वर की प्रतिज्ञाएँ ॥

धर्मपत्नीं मिलित्वैव, होकं जीवनमावयोः।

अद्यारभ्य यतो मे त्वम्, अर्द्धाग्निनीति घोषिता ॥१॥

आज से धर्मपत्नी को अर्द्धाग्निनी घोषित करते हुए, उसके साथ अपने व्यक्तित्व को मिलाकर एक नये जीवन की सृष्टि करता हूँ। अपने शरीर के अंगों की तरह धर्मपत्नी का ध्यान रखूँगा।

स्वीकरोमि सुखेन त्वां, गृहलक्ष्मीमहन्ततः।

मन्त्रयित्वा विधास्यामि, सुकार्याणि त्वया सह ॥२॥

प्रसन्नतापूर्वक गृहलक्ष्मी का महान् अधिकार सौंपता हूँ और जीवन के निर्धारण में उनके परामर्श को महत्त्व दूँगा।

रूप-स्वास्थ्य-स्वभावान्तु, गुणदोषादीन् सर्वतः।

रोगाज्ञान-विकारांश्च, तव विस्मृत्य चेतसः ॥३॥

रूप, स्वास्थ्य, स्वभावगत गुण-दोष एवं अज्ञानजनित विकारों को चित में नहीं रखूँगा, उनके कारण असन्तोष व्यक्त नहीं करूँगा। स्नेहपूर्वक सुधारने या सहन करते हुए आत्मीयता बनाये रखूँगा।

सहचरो भविष्यामि, पूर्णस्नेहः प्रदास्यते।

सत्यता मम निष्ठा च, यस्याधारं भविष्यति ॥४॥

पत्नी का मित्र बनकर रहूँगा और पूरा-पूरा स्नेह देता रहूँगा। इस वचन का पालन पूरी निष्ठा और सत्य के आधार पर करूँगा।

यथा पवित्रचित्तेन, पातिव्रत्यं त्वया धृतम्।

तथैव पालयिष्यामि, पत्नीव्रतमहं ध्रुवम् ॥५॥

पत्नी के लिए जिस प्रकार पतिव्रत की मर्यादा कही गयी है, उसी दृढ़ता से स्वयं पत्नीव्रत धर्म का पालन करूँगा। चिन्तन और आचरण दोनों से ही पर नारी से वासनात्मक सम्बन्ध नहीं जोड़ूँगा।

गृहस्यार्थव्यवस्थायां, मन्त्रयित्वा त्वया सह।

संचालनं करिष्यामि, गृहस्थोचित-जीवनम् ॥६॥

गृह-व्यवस्था में धर्म-पत्नी को प्रधानता दूँगा। आमदनी और खर्च का क्रम उसकी सहमति से करने की गृहस्थोचित जीवनचर्या अपनाऊँगा।

समृद्धि-सुख-शान्तीनां, रक्षणाय तथा तव।

व्यवस्थां वै करिष्यामि, स्वशक्तिवैभवादिभिः ॥७॥

धर्मपत्नी की सुख-शान्ति तथा प्रगति-सुरक्षा की व्यवस्था करने में अपनी शक्ति और साधन आदि को पूरी ईमानदारी से लगाता रहूँगा।

यत्नशीलो भविष्यामि, सन्मार्गसेवितुं सदा।

आवयोः मतभेदांश्च, दोषान्संशोध्य शान्तितः ॥८॥

अपनी ओर से मधुर भाषण और श्रेष्ठ व्यवहार बनाये रखने का पूरा-पूरा प्रयत्न करूँगा। मतभेदों और भूलों का सुधार शान्ति के साथ करूँगा। किसी के सामने पत्नी को लांछित-तिरस्कृत नहीं करूँगा।

भवत्यामसमर्थायां, विमुखायाञ्च कर्मणि।

विश्वासं सहयोगञ्च, मम प्राप्स्यसि त्वं सदा ॥९॥

पत्नी के असमर्थ या अपने कर्तव्य से विमुख हो जाने पर भी अपने सहयोग और कर्तव्य-पालन में रती भर भी कमी न रखूँगा।

॥ कन्या की प्रतिज्ञाएँ ॥

स्वजीवनं मेलयित्वा, भवतः खलु जीवने।

भूत्वा चार्द्धाग्निनी नित्यं, निवत्स्यामि गृहे सदा ॥१॥

अपने जीवन को पति के साथ संयुक्त करके नये जीवन की सृष्टि करूँगी। इस प्रकार घर में हमेशा सच्चे अर्थों में अर्द्धाग्निनी बनकर रहूँगी।

शिष्टतापूर्वकं सर्वैः, परिवारजनैः सह।

औदार्येण विधास्यामि, व्यवहारं च कोमलम् ॥२॥

पति के परिवार के परिजनों को एक ही शरीर के अंग मानकर सभी के साथ शिष्टता बरतूँगी, उदारतापूर्वक सेवा करूँगी, मधुर व्यवहार करूँगी।

त्यक्त्वा लस्यं करिष्यामि, गृहकार्ये परिश्रमम् ।
भर्तुर्हर्षं हि ज्ञास्यामि, स्वीयामेव प्रसन्नताम् ॥३॥

आलस्य को छोड़कर परिश्रमपूर्वक गृह कार्य करूँगी । इस प्रकार पति की प्रगति और जीवन विकास में समुचित योगदान करूँगी ।

श्रद्धया पालयिष्यामि, धर्मं पातिव्रतं परम् ।

सर्वदेवानुकूल्येन, पत्युरादेशपालिका ॥४॥

पतिव्रत धर्म का पालन करूँगी, पति के प्रति श्रद्धा-भाव बनाये रखकर सदैव उनके अनुकूल रहूँगी । कपट-दुराव न करूँगी, निर्देशों के अविलम्ब पालन का अभ्यास करूँगी ।

सुश्रूषणपरा स्वच्छा, मधुर-प्रियभाषिणी ।

प्रतिजाने भविष्यामि, सततं सुखदायिनी ॥५॥

सेवा, स्वच्छता तथा प्रियभाषण का अभ्यास बनाये रखूँगी । ईर्ष्या, कुढ़न आदि दोषों से बचूँगी और सदा प्रसन्नता देनेवाली बनकर रहूँगी ।

मितव्ययेन गार्हस्थ्य-सञ्चालने हि नित्यदा ।

प्रयतिष्ये च सोत्साहं, तवाहमनुगामिनी ॥६॥

मितव्ययी बनकर फिजूलखर्ची से बचूँगी । पति के असमर्थ हो जाने पर भी गृहस्थ के अनुशासन का पालन करूँगी ।

देवस्वरूपो नारीणां, भर्ता भवति मानवः ।

मत्वेति त्वां भजिष्यामि, नियता जीवनावधिम् ॥७॥

नारी के लिए पति, देव स्वरूप होता है- यह मानकर मतभेद भुलाकर, सेवा करते हुए जीवनभर सक्रिय रहूँगी, कभी भी पति का अपमान न करूँगी ।

पूज्यास्तव पितरो ये, श्रद्धया परमा हि मे ।

सैवया तोषयिष्यामि, तान्सदा विनयेन च ॥८॥

जो पति के पूज्य और श्रद्धा पात्र हैं, उन्हें सेवा द्वारा और विनय द्वारा सदैव सन्तुष्ट रखूँगी ।

विकासाय सुसंस्कारैः, सूत्रैः सद्भाववर्द्धिभिः ।

परिवारसदस्यानां, कौशलं विकसाम्यहम् ॥९॥

परिवार के सदस्यों में सुसंस्कारों के विकास तथा उन्हें सद्भावना के सूत्रों में बाँधे रहने का कौशल अपने अन्दर विकसित करूँगी ॥

॥ यज्ञीय प्रक्रिया ॥

शपथ ग्रहण के बाद उनकी श्रेष्ठ भावनाओं के विकास और पोषण के लिए यज्ञीय वातावरण निर्मित किया जाता है । अग्नि स्थापना कराके, क्रमबद्ध ढंग से गायत्री मन्त्र की ९, १२ या २४ आहुतियाँ दी जाएँ । इसके बाद प्रायश्चित्त होम कराया जाए ।

॥ प्रायश्चित्त होम ॥

दिशा एवं प्रेरणा- गायत्री मन्त्र की आहुति के पश्चात् पाँच आहुतियाँ प्रायश्चित्त होम की अतिरिक्त रूप से दी जाती हैं । वर और कन्या दोनों के हाथ में हवन सामग्री दी जाती है । प्रायश्चित्त होम की आहुतियाँ देते समय यह भावना दोनों के मन में आनी चाहिए कि दाम्पत्य जीवन में बाधक जो भी कुसंस्कार अब तक मन में रहे हों, उन सब को स्वाहा किया जा रहा है । किसी से गृहस्थ के आदर्शों के उल्लंघन करने की कोई भूल हुई हो, तो उसे अब एक स्वप्न जैसी बात समझकर विस्मरण कर दिया जाए । इस प्रकार की भूल के कारण कोई किसी को न तो दोष दे, न सन्देह की दृष्टि से देखे । इसी प्रकार कोई अन्य नशेबाजी जैसा दुर्व्यसन रहा हो या स्वभाव में कठोरता, स्वार्थपरता, अहंकार जैसी कोई त्रुटि रही हो, तो उसका त्याग कर दिया जाए । साथ ही उन भूलों का प्रायश्चित्त करते हुए भविष्य में कोई ऐसी भूल न करने का संकल्प भी करना है, जो दाम्पत्य जीवन की प्रगति में बाधा उत्पन्न करे ।

क्रिया और भावना- वर-वधू हवन सामग्री से आहुति करें । भावना करें कि प्रायश्चित्त आहुति के साथ पूर्व दुष्कृत्यों की धुलाई हो रही है । स्वाहा के साथ आहुति डालें, इदं न मम के साथ हाथ जोड़कर नमस्कार करें —

ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्, देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो, विश्वा द्वेषा ऽसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्यां इदं न मम ॥ - २१.३
ॐ स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती, नेदिष्ठो अस्याऽ उषसो व्युष्टौ । अव यक्ष्व नो वरुण ऽस्य रराणो, वीहि मृडीक ऽस्य सुहवो न ऽ एधि स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्यां इदं न मम ॥ - २१.४

ॐ अयाश्चाग्नेऽस्य नभिःशस्तिपाश्च, सत्यमित्वमयाऽ
असि। अया नो यज्ञं वहास्यया, नो धेहि भेषजं १३ स्वाहा।
इदमग्नये अयसे इदं न मम। - का० श्रौ० सू० २५.१.११

ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं, यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः,
तेभिर्नोऽद्य सवितोत विष्णुः, विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः
स्वाहा। इदं वरुणायसवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो
मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च इदं न मम। - का० श्रौ० सू० २५.१.११

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं, विमध्यमं १३
श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो, अदितये स्याम
स्वाहा। इदं वरुणायादित्यायादितये च इदं न मम। - १२.१२

॥ शिलारोहण ॥

दिशा एवं प्रेरणा- शिलारोहण के द्वारा पत्थर पर पैर रखते हुए प्रतिज्ञा करते हैं कि जिस प्रकार अंगद ने अपना पैर जमा दिया था, उसी तरह हम पत्थर की लकीर की तरह अपना पैर उत्तरदायित्वों को निबाहने के लिए जमाते हैं। यह धर्मकृत्य खेल-खिलौने की तरह नहीं किया जा रहा, जिसे एक मखौल समझकर तोड़ा जाता रहे; वरन् यह प्रतिज्ञाएँ पत्थर की लकीर की तरह अमिट बनी रहेंगी, ये चट्टान की तरह अटूट एवं चिरस्थायी रखी जायेंगी।

क्रिया और भावना- मन्त्र बोलने के साथ वर-वधू अपने दाहिने पैर शिला पर रखें, भावना करें कि उत्तरदायित्वों के निर्वाह करने तथा बाधाओं को पार करने की शक्ति हमारे संकल्प और देव अनुग्रह से मिल रही है।

ॐ आरोहेममश्मानमश्मेव त्वं १३ स्थिरा भव।

अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः ॥ पार० गू० सू० १.७.१

॥ लाजाहोम एवं परिक्रमा (भाँवर) ॥

प्रायश्चित्त आहुति के बाद लाजाहोम और यज्ञाग्नि की परिक्रमा (भाँवर) का मिला-जुला क्रम चलता है। लाजाहोम के लिए कन्या का भाई एक थाली में खील (भुना हुआ धान) लेकर पीछे खड़ा हो। एक मुट्ठी खील अपनी बहिन को दे। कन्या उसे वर को सौंप दे। वर उसे आहुति मन्त्र के साथ हवन

कर दे। इस प्रकार तीन बार किया जाए। कन्या तीनों बार भाई के द्वारा दिये हुए खील अपने पति को दे, वह तीनों बार हवन में अर्पण कर दे। लाजाहोम में भाई के घर से अन्न (खील के रूप में) बहिन को मिलता है, उसे वह अपने पति को सौंप देती है। कहती है बेशक मेरे व्यक्तिगत उपयोग के लिए पिता के घर से मुझे कुछ मिला है, पर उसे मैं छिपाकर अलग से नहीं रखती, आपको सौंपती हूँ। अलगाव या छिपाव का भाव कोई मन में न आए, इसलिए जिस प्रकार पति कुछ कमाई करता है, तो पत्नी को सौंपता है, उसी प्रकार पत्नी भी अपनी उपलब्धियों को पति के हाथ में सौंपती है। पति सोचता है, हम लोग हाथ-पैर से जो कमायेंगे, उसी से अपना काम चलायेंगे, किसी के उदारतापूर्वक दिये हुए अनुदान को बिना श्रम किये खाकर क्यों हम किसी के ऋणी बनें। इसलिए पति उस लाजा को अपने खाने के लिए नहीं रख लेता, वरन् यज्ञ में होम देता है। जन कल्याण के लिए उस पदार्थ को वायुभूत बनाकर संसार के वायुमण्डल में बिखेर देता है। इस क्रिया में यहाँ महान् मानवीय आदर्श सन्निहित है कि मुफ्त का माल या तो स्वीकार ही न किया जाए या मिले भी तो उसे लोकहित में खर्च कर दिया जाए। लोग अपनी-अपनी निज की पसीने की कमाई पर ही गुजर-बसर करें। मृतकभोज के पीछे भी यही आदर्शवादिता थी कि पिता के द्वारा उत्तराधिकार में मिले हुए धन को लड़के अपने काम में नहीं लेते थे, वरन् समाजसेवी ब्राह्मणों के निर्वाह में या अन्य पुण्यकार्यों में खर्च कर डालते थे। यही दहेज के सम्बन्ध में भी ठीक है। पिता के गृह से उदारतापूर्वक मिला, सो उनकी भावना सराहनीय है, पर आपकी भी तो कुछ भावना होनी चाहिए। मुफ्त का माल खाते हुए किसी कमाऊ मनुष्य को गैरत आना स्वाभाविक है। उसका यह सोचना ठीक ही है कि बिना परिश्रम का धन, वह भी दान की उदार भावना से दिया हुआ उसे पचेगा नहीं, इसलिए उपहार को जन मंगल के कार्य में, परमार्थ यज्ञ में आहुति कर देना ही उचित है। इसी उद्देश्य से पत्नी के भाई के द्वारा दिये गये लाजा को वह यज्ञ कार्य में लगा देता है। दहेज का ठीक उपयोग यही है, प्रथा भी है कि विवाह के अवसर पर वरपक्ष की ओर से बहुत सा दान-पुण्य किया जाता है।

अच्छा हो जो कुछ मिले, वह सबको ही दान कर दे। विवाह के समय

ही नहीं अन्य अवसरों पर भी यदि कभी किसी से कुछ ऐसा ही बिना परिश्रम का उपहार मिले, तो उसके सम्बन्ध में एक ही नीति रहनी चाहिए कि मुफ्त का माल खाकर हम परलोक के ऋणी न बनेंगे; वरन् ऐसे अनुदान को परमार्थ में लगाकर उस उदार परम्परा को अपने में न रोककर आगे जन कल्याण के लिए बढ़ा देंगे। कहाँ भारतीय संस्कृति की उदार भावना और कहाँ आज के धन लोलुपों द्वारा कन्या पक्ष की आँतें नोच डालने वाली दहेज की पैशाचिक माँगें, दोनों में जमीन-आसमान जैसा अन्तर है। जिसने अपने हृदय का, आत्मा का टुकड़ा कन्या दे दी, उनके प्रति वर पक्ष का रोम-रोम कृतज्ञ होना चाहिए और यह सोचना चाहिए कि इस अलौकिक उपहार के बदले में किस प्रकार अपनी श्रद्धा-सद्भावना व्यक्त करें। यह न होकर उल्टे जब कन्या पक्ष को दबा हुआ समझ कर उसे तरह-तरह से सताने और चूसने की योजना बनाई जाती है, तो यही समझना चाहिए कि भारतीय परम्पराएँ बिल्कुल उल्टी हो गयीं। धर्म के स्थान पर अधर्म, देवत्व के स्थान पर असुरता का साम्राज्य छा गया। लाजाहोम वर्तमान काल की क्षुद्र मान्यताओं को धिक्कारता है और दहेज के सम्बन्ध में सही दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देता है।

परिक्रमा- अग्नि की पति-पत्नी परिक्रमा करें। बायें से दायें की ओर चलें। पहली चार परिक्रमाओं में कन्या आगे रहे और वर पीछे। चार परिक्रमा हो जाने पर लड़का आगे हो जाए और लड़की पीछे। परिक्रमा के समय परिक्रमा मन्त्र बोला जाए तथा हर परिक्रमा पूरी होने पर एक-एक आहुति वर-वधू गायत्री मन्त्र से करते चलें, इसका तात्पर्य है - घर-परिवार के कार्यों में लड़की का नेतृत्व रहेगा, उसके परामर्श को महत्त्व दिया जाएगा, वर उसका अनुसरण करेगा, क्योंकि उन कामों का नारी को अनुभव अधिक होता है।

बाहर के कार्यों में वर नेतृत्व करता है और नारी उसका अनुसरण करती है; क्योंकि व्यावसायिक क्षेत्रों में वर का अनुभव अधिक होता है। जिसमें जिस दिशाकी जानकारी कम हो, दूसरे में उसकी जानकारी बढ़ाकर अपने समतुल्य बनाने में प्रयत्नशील रहें। भावना क्षेत्र में नारी आगे है, कर्म क्षेत्र में पुरुष। दोनों पक्ष अपने-अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण हैं। कुल मिलाकर नारी का वर्चस्व, पद, गौरव एवं वजन बड़ा बैठता है। इसलिए उसे चार परिक्रमा करने और नर को तीन परिक्रमा करने का अवसर दिया जाता है। गौरव के

चुनाव के ४ वोट कन्या को और ३ वोट वर को मिलते हैं, इसलिए सदा नर से पहला स्थान नारी को मिला है। सीताराम, राधेश्याम, लक्ष्मीनारायण, उमामहेश आदि युग्मों में पहले नारी का नाम है, पीछे नर का।

क्रिया और भावना- लाजा होम और परिक्रमा का मिलाजुला क्रम चलता है। शिलारोहण के बाद वर-वधू खड़े-खड़े गायत्री मन्त्र से एक आहुति समर्पित करें। अब मंत्र के साथ परिक्रमा करें। वधू आगे, वर पीछे चले।

एक परिक्रमा पूरी होने पर लाजाहोम की एक आहुति करें। आहुति करके दूसरी परिक्रमा पहले की तरह मन्त्र बोलते हुए करें। इसी प्रकार लाजाहोम की दूसरी आहुति करके तीसरी परिक्रमा तथा तीसरी आहुति करके चौथी परिक्रमा करें। इसके बाद गायत्री मन्त्र की आहुति देते हुए तीन परिक्रमाएँ वर को आगे करके परिक्रमा मन्त्र बोलते हुए कराई जाएँ। आहुति के साथ भावना करें कि बाहर यज्ञीय ऊर्जा तथा अन्तःकरण में यज्ञीय भावना तीव्रतर हो रही है। परिक्रमा के साथ भावना करें कि यज्ञीय अनुशासन को केन्द्र मानकर, यज्ञाग्नि को साक्षी करके आदर्श दाम्पत्य के निर्वाह का संकल्प कर रहे हैं।

॥ लाजाहोम ॥

ॐ अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत। स नोऽअर्यमा देवः
प्रेतो मुञ्चतु, मा पतेः स्वाहा। इदम् अर्यम्णे अग्नये इदं न मम॥

ॐ इयं नार्युपब्रूते लाजा नावपन्निका। आयुष्मानस्तु मे
पतिरेधन्तां, ज्ञातया मम स्वाहा। इदम् अग्नये इदं न मम॥

ॐ इमाँल्लाजानावपाभ्यग्नौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्यं
च संवननं, तदग्निरनुमन्यतामिय १४ स्वाहा।

इदम् अग्नये इदं न मम॥

- पार० गृ० सू० १.६.३

॥ परिक्रमा मन्त्र ॥

ॐ तुभ्यमग्रे पर्यवहन्सूर्या वहतु ना सह। पुनः पतिभ्यो
जायां दा अग्ने प्रजया सह॥ - ऋ० १०.८५.३८, पार० गृ० सू० १.७.३

॥ सप्तपदी ॥

दिशा एवं प्रेरणा- भाँवरें फिर लेने के उपरान्त सप्तपदी की जाती है । सात बार वर-वधू साथ-साथ कदम से कदम मिलाकर फौजी सैनिकों की तरह आगे बढ़ते हैं । सात चावल की ढेरी या कलावा बँधे हुए सकोरे रख दिये जाते हैं, इन लक्ष्य-चिह्नों को पैर लगाते हुए दोनों एक-एक कदम आगे बढ़ते हैं, रुक जाते हैं और फिर अगला कदम बढ़ाते हैं । इस प्रकार सात कदम बढ़ाये जाते हैं । प्रत्येक कदम के साथ एक-एक मन्त्र बोला जाता है ।

पहला कदम अन्न के लिए, दूसरा बल के लिए, तीसरा धन के लिए, चौथा सुख के लिए, पाँचवाँ परिवार के लिए, छठवाँ ऋतुचर्या के लिए और सातवाँ मित्रता के लिए उठाया जाता है । विवाह होने के उपरान्त पति-पत्नी को मिलकर सात कार्यक्रम अपनाने पड़ते हैं । उनमें दोनों का उचित और न्याय संगत योगदान रहे, इसकी रूपरेखा सप्तपदी में निर्धारित की गई है ।

प्रथम कदम अन्न वृद्धि के लिए है । आहार स्वास्थ्यवर्धक हो, घर में चटोरेपन को कोई स्थान न मिले । रसोई में जो बने, वह ऐसा हो कि स्वास्थ्य रक्षा का प्रयोजन पूरा करे, भले ही वह स्वादिष्ट न हो । अन्न का उत्पादन, अन्न की रक्षा, अन्न का सदुपयोग जो कर सकता है, वही सफल गृहस्थ है । अधिक पका लेना, जूठन छोड़ना, बर्तन खुले रखकर अन्न की चूहों से बर्बादी कराना, मिर्च-मसालों की भरमार से उसे तमोगुणी बना देना, स्वच्छता का ध्यान न रखना आदि बातों से आहार पर बहुत खर्च करते हुए भी स्वास्थ्य नष्ट होता है, इसलिए दाम्पत्य जीवन का उत्तरदायित्व यह है कि आहार की सात्त्विकता का समुचित ध्यान रखा जाए ।

दूसरा कदम शारीरिक और मानसिक बल की वृद्धि के लिए है । व्यायाम, परिश्रम, उचित एवं नियमित आहार-विहार से शरीर का बल स्थिर रहता है । अध्ययन एवं विचार-विमर्श से मनोबल बढ़ता है । जिन प्रयत्नों से दोनों प्रकार के बल बढ़ें, दोनों अधिक समर्थ, स्वस्थ एवं सशक्त बनें-उसका उपाय सोचते रहना चाहिए ।

तीसरा कदम धन की वृद्धि के लिए है । अर्थ व्यवस्था बजट बनाकर चलाई जाए । अपव्यय में कानी कौड़ी भी नष्ट न होने पाए । उचित कार्यों में कंजूसी न की जाए- फैशन, व्यसन, शेखीखोरी आदि के लिए

पैसा खर्च न करके उसे पारिवारिक उन्नति के लिए सँभालकर, बचाकर रखा जाए । उपार्जन के लिए पति-पत्नी दोनों ही प्रयत्न करें । पुरुष बाहर जाकर कृषि, व्यवसाय, नौकरी आदि करते हैं, तो स्त्रियाँ सिलाई, धुलाई, सफाई आदि करके इस तरह की कमाई करती हैं । उपार्जन पर जितना ध्यान रखा जाता है, खर्च की मर्यादाओं का भी वैसा ही ध्यान रखते हुए घर की अर्थव्यवस्था सँभाले रहना दाम्पत्य जीवन का अनिवार्य कर्तव्य है ।

चौथा कदम सुख की वृद्धि के लिए है । विश्राम, मनोरंजन, विनोद, हास-परिहास का ऐसा वातावरण रखा जाए कि गरीबी में भी अमीरी का आनन्द मिले । दोनों प्रसन्नचित्त रहें । मुस्कराने की आदत डालें, हँसते-हँसाते जिन्दगी काटें । चित्त को हल्का रखें, 'सन्तोषी सदा सुखी' की नीति अपनाएँ ।

पाँचवाँ कदम परिवार पालन का है । छोटे बड़े सभी के साथ समुचित व्यवहार रखा जाए । आश्रित पशुओं एवं नौकरों को भी परिवार माना जाए, इन सभी आश्रितों की समुचित देखभाल, सुरक्षा, उन्नति एवं सुख-शान्ति के लिए सदा सोचने और करने में लापरवाही न बरती जाए ।

छठा कदम ऋतुचर्या का है । सन्तानोत्पादन एक स्वाभाविक वृत्ति है, इसलिए दाम्पत्य जीवन में उसका भी एक स्थान है, पर उस सम्बन्ध में मर्यादाओं का पूरी कठोरता एवं सतर्कता से पालन किया जाए ; क्योंकि असंयम के कारण दोनों के स्वास्थ्य का सर्वनाश होने की आशंका रहती है, गृहस्थ में रहकर भी ब्रह्मचर्य का समुचित पालन किया जाए । दोनों एक दूसरे को साथी-सहयोगी-मित्र की दृष्टि से देखें, कामुकता के सर्वनाशी प्रसंगों को जितना सम्भव हो, दूर रखा जाए । सन्तान उत्पन्न करने से पूर्व हजार बार विचार करें कि अपनी स्थिति सन्तान को सुसंस्कृत बनाने योग्य है या नहीं । उसी मर्यादा में सन्तान उत्पन्न करने की जिम्मेदारी वहन करें ।

सातवाँ कदम मित्रता को स्थिर रखने एवं बढ़ाने के लिए है । दोनों इस बात पर बारीकी से विचार करते रहें कि उनकी ओर से कोई ऐसी त्रुटि तो नहीं बरती जा रही है, जिसके कारण साथी को रुष्ट या असंतुष्ट होने का अवसर आए । दूसरा पक्ष कुछ भूल भी कर रहा हो, तो उसका उत्तर कठोरता, कर्कशता से नहीं, वरन् सज्जनता, सहृदयता के साथ दिया जाना चाहिए ; ताकि उस महानता से दबकर साथी को स्वतः ही सुधरने की अन्तःप्रेरणा

मिले। बाहर के लोगों के साथ, दुष्टों के साथ दुष्टता की नीति किसी हद तक अपनाई जा सकती है, पर आत्मीयजनों का हृदय जीतने के लिए उदारता, सेवा, सौजन्य, क्षमा जैसे शस्त्र ही काम में लाये जाने चाहिए। सप्तपदी में सात कदम बढ़ाते हुए इन सात सूत्रों को हृदयंगम करना पड़ता है। इन आदर्शों और सिद्धांतों को यदि पति-पत्नी द्वारा अपना लिया जाए और उसी मार्ग पर चलने के लिए कदम से कदम बढ़ाते हुए अग्रसर होने की ठान ली जाए, तो दाम्पत्य जीवन की सफलता में कोई सन्देह ही नहीं रह जाता।

क्रिया और भावना- वर-वधू खड़े हों। प्रत्येक कदम बढ़ाने से पहले देव शक्तियों की साक्षी का मंत्र बोला जाता है, उस समय वर-वधू हाथ जोड़कर ध्यान करें। उसके बाद चरण बढ़ाने का मंत्र बोलने पर पहले दायाँ कदम बढ़ाएँ। इसी प्रकार एक-एक करके सात कदम बढ़ाये जाएँ। भावना की जाए कि योजनाबद्ध-प्रगतिशील जीवन के लिए देव साक्षी में संकल्पित हो रहे हैं, संकल्प और देव अनुग्रह का संयुक्त लाभ जीवन भर मिलता रहेगा।

(१) अन्न वृद्धि के लिए पहली साक्षी-

ॐ एको विष्णुर्जगत्सर्वं, व्याप्तं येन चराचरम्।

हृदये यस्ततो यस्य, तस्य साक्षी प्रदीयताम्॥

पहला चरण - ॐ इष एकपदी भव सा मामनुव्रता भव।

विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै, बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः॥१॥

(२) बल वृद्धि के लिए दूसरी साक्षी-

ॐ जीवात्मा परमात्मा च, पृथ्वी आकाशमेव च।

सूर्यचन्द्रद्वयोर्मध्ये, तस्य साक्षी प्रदीयताम्॥

दूसरा चरण - ॐ ऊर्जे द्विपदी भव सा मामनुव्रता भव।

विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै, बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः॥२॥

(३) धन वृद्धि के लिए तीसरी साक्षी-

ॐ त्रिगुणाश्च त्रिदेवाश्च, त्रिशक्तिः सत्परायणाः।

लोकत्रये त्रिसन्ध्यायाः, तस्य साक्षी प्रदीयताम्॥

तीसरा चरण - ॐ रायस्पोषाय त्रिपदी भव सा मामनुव्रता भव। विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै, बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः॥३॥

(४) सुख वृद्धि के लिए चौथी साक्षी-

ॐ चतुर्मुखस्ततो ब्रह्मा, चत्वारो वेदसंभवाः।

चतुर्गुणाः प्रवर्तन्ते, तेषां साक्षी प्रदीयताम्॥

चौथा चरण - ॐ मायो भवाय चतुष्पदी भव सा मामनुव्रता भव। विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै, बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः॥

(५) प्रजा पालन के लिए पाँचवीं साक्षी-

ॐ पंचमे पंचभूतानां, पंचप्राणैः परायणाः।

तत्र दर्शनपुण्यानां, साक्षिणः प्राणपंचथाः॥

पाँचवाँ चरण - ॐ प्रजाभ्यः पंचपदी भव सा मामनुव्रता भव।

विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै, बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः॥५॥

(६) ऋतु व्यवहार के लिए छठवीं साक्षी-

ॐ षष्ठे तु षड्रतूणां च, षण्मुखः स्वामिकार्तिकः।

षड्रसा यत्र जायन्ते, कार्तिकेयाश्च साक्षिणः॥

छठवाँ चरण - ॐ ऋतुभ्यः षट्पदी भव सा मामनुव्रता भव।

विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै, बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः॥६॥

(७) मित्रता वृद्धि के लिए सातवीं साक्षी-

ॐ सप्तमे सागराश्चैव, सप्तद्वीपाः सपर्वताः।

येषां सप्तर्षिपत्नीनां, तेषामादर्शसाक्षिणः॥

सातवाँ चरण - ॐ सखे सप्तपदी भव सा मामनुव्रता भव।

विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै, बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः॥७॥

- पार० गृ० सू० १. ८.१-२, आ० गृ० सू० १.७.१९

॥ आसन परिवर्तन ॥

सप्तपदी के पश्चात् आसन परिवर्तन करते हैं। अब तक वधू दाहिनी ओर थी अर्थात् बाहरी व्यक्ति जैसी स्थिति में थी। अब सप्तपदी होने तक की प्रतिज्ञाओं में आबद्ध हो जाने के उपरान्त वह घर वाली अपनी आत्मीय बन जाती है, इसलिए उसे बायीं ओर बैठाया जाता है। बायें से दायें लिखने का क्रम है। बायाँ प्रथम और दाहिना द्वितीय माना जाता है। सप्तपदी के बाद अब पत्नी को प्रमुखता प्राप्त हो गयी। लक्ष्मी-नारायण, उमा-महेश,

सीता-राम, राधे-श्याम आदि नामों में पत्नी को प्रथम, पति को द्वितीय स्थान प्राप्त है। दाहिनी ओर से वधू का बायीं ओर आना, अधिकार हस्तांतरण है। बायीं ओर के बाद पत्नी गृहस्थ जीवन की प्रमुख सूत्रधार बनती है।

ॐ इह गावो निषीदन्तु, इहाश्वा इह पूरुषाः।

इहो सहस्रदक्षिणो यज्ञ, इह पूषा निषीदतु ॥ - पार० गृ० सू० १.८.१०

॥ पाद प्रक्षालन ॥

आसन परिवर्तन के बाद गृहस्थाश्रम के साधक के रूप में वर-वधू का सम्मान पाद प्रक्षालन करके किया जाता है। कन्या पक्ष की ओर से प्रतिनिधि स्वरूप कोई दम्पति या अकेले व्यक्ति पाद प्रक्षालन करे। पाद प्रक्षालन करने वालों का पवित्रीकरण-सिंचन किया जाए। हाथ में हल्दी, दूर्वा, थाली में जल लेकर प्रक्षालन करें। प्रथम मन्त्र के साथ तीन बार वर-वधू के पैर पखारें, फिर दूसरे मन्त्र के साथ यथा श्रद्धा भेंट दें।

ॐ या ते पतिघ्नी प्रजाघ्नी पशुघ्नी, गृहघ्नी यशोघ्नी निन्दिता तनूर्जारघ्नीं ततऽएनांकरोमि, सा जीर्य त्वं मया सह ॥

- पार० गृ० सू० १.११

ॐ ब्रह्मणा शालां निमितां, कविभिर्निमितां मिताम्।

इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥ - अथर्व० ९.३.१९

॥ ध्रुव-सूर्य ध्यान ॥

ध्रुव स्थिर तारा है। अन्य सब तारागण गतिशील रहते हैं, पर ध्रुव अपने निश्चित स्थान पर ही स्थिर रहता है। अन्य तारे उसकी परिक्रमा करते हैं। ध्रुव दर्शन का अर्थ है- दोनों अपने-अपने परम पवित्र कर्तव्यों पर उसी तरह दृढ़ रहेंगे, जैसे कि यह ध्रुव तारा स्थिर है। कुछ कारण उत्पन्न होने पर भी इस आदर्श से विचलित न होने की प्रतिज्ञा को निभाया जाए, व्रत को पाला जाए और संकल्प को पूरा किया जाए। ध्रुव स्थिर चित्त रहने की ओर, अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहने की प्रेरणा देता है। इसी प्रकार सूर्य की अपनी प्रखरता, तेजस्विता, महत्ता सदा स्थिर रहती है। वह अपने निर्धारित पथ पर ही चलता है, यही हमें करना चाहिए। यही भावना पति-पत्नी करें।

॥ सूर्य ध्यान (दिन में) ॥

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं, शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः, स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात् ॥ - ३६.२४

॥ ध्रुव ध्यान (रात में) ॥

ॐ ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि, ध्रुवैधि पोष्ये मयि। मह्यं त्वादात् बृहस्पतिर्मयापत्या, प्रजावती सज्जीव शरदः शतम्।

- पार० गृ० सू० १.८.१९

॥ शपथ आश्वासन ॥

पति-पत्नी एक दूसरे के सिर पर हाथ रखकर समाज के सामने शपथ लेते हैं, एक आश्वासन देकर अन्तिम प्रतिज्ञा करते हैं कि वे निस्संदेह निश्चित रूप से एक दूसरे को आजीवन ईमानदार, निष्ठावान् और वफादार रहने का विश्वास दिलाते हैं। पिछले दिनों पुरुषों का व्यवहार स्त्रियों के साथ छली-कपटी और विश्वासघातियों जैसा रहा है। रूप, यौवन के लोभ में कुछ दिन मीठी बातें बनाते हैं, पीछे क्रूरता एवं दुष्टता पर उतर आते हैं। पग-पग पर उन्हें सताते और तिरस्कृत करते हैं। प्रतिज्ञाओं को तोड़कर आर्थिक एवं चारित्रिक उच्छृंखलता बरतते हैं और पत्नी की इच्छा की परवाह नहीं करते। समाज में ऐसी घटनाएँ कम घटित नहीं होतीं। ऐसी दशा में ये प्रतिज्ञाएँ औपचारिकता मात्र रह जाने की आशंका हो सकती है। सन्तान न होने पर या लड़कियाँ होने पर लोग दूसरा विवाह करने पर उतारू हो जाते हैं। पति सिर पर हाथ रखकर कसम खाता है कि दूसरे दुरात्माओं की श्रेणी में उसे न गिना जाए। इस प्रकार पत्नी भी अपनी निष्ठा के बारे में पति को इस शपथ-प्रतिज्ञा द्वारा विश्वास दिलाती है।

ॐ मम व्रते ते हृदयं दधामि, मम चित्तमनुचितं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व, प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥

- पार० गृ० सू० १.८.८

॥ सुमंगली-सिंदूरदान ॥

मन्त्र के साथ वर अँगूठी से वधू की माँग में सिंदूर तीन बार लगाए ।
भावना करे कि मैं वधू के सौभाग्य को बढ़ाने वाला सिद्ध होऊँ -

ॐ सुमंगलीरियं वधूरिमा ३३ समेत पश्यत । सौभाग्य-
मस्यै दत्त्वा याथास्तं विपरेतन । “सुभगा स्त्री सावित्र्यास्तव
सौभाग्यं भवतु” ॥ - पार० गृ० सू० १८.९

॥ मंगलतिलक ॥

वधू वर को मंगल तिलक करे । भावना करे, पति का सम्मान करते हुए
गौरव को बढ़ाने वाली सिद्ध होऊँ -

ॐ स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै, सोमं स्वस्ति भुवनस्य
यस्पतिः । बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये, स्वस्तये ऽ आदित्यासो
भवन्तु नः ॥ - ऋ० ५.५१.१२

इसके पश्चात् स्विष्टकृत होम, पूर्णाहुति, वसोर्धारा, आरती,
घृत-अवघ्राण, भस्म धारण, क्षमा प्रार्थना आदि कृत्य सम्पन्न करें ।

॥ अभिषेक - सिंचन ॥

वर-कन्या को बिठाकर कलश का जल लेकर उनका सिंचन किया
जाए । भावना की जाए कि जो सुसंस्कार बोये गये हैं, उन्हें दिव्यजल से
सिंचित किया जा रहा है । सबके सद्भाव से उनका विकास होगा और
सफलता-कुशलता के कल्याणप्रद सुफल उनमें लगेंगे । पुष्प वर्षा के रूप
में सभी अपनी शुभकामनाएँ-आशीर्वाद प्रदान करें—

गणपतिः गिरिजा वृषभध्वजः,

षण्मुखो नन्दीमुखडिमडिमा ।

मनुज-माल-त्रिशूल-मृगत्वचः,

प्रतिदिनं कुशलं वरकन्ययोः ॥१॥

रविशशी-कुज इन्द्र-जगत्पतिः,

भृगुज-भानुज-सिन्धुज-केतवः ।

उडुगणा-तिथि-योग च राशयः

प्रतिदिनं कुशलं वरकन्ययोः ॥२॥

वरुण-इन्द्र-कुबेर-हुताशनाः,

यम-समीरण-वारण-कुंजराः ।

सुरगणाः सुराश्च महीधराः,

प्रतिदिनं कुशलं वरकन्ययोः ॥३॥

सुरसरी-रविनन्दिनि-गोमती,

सरयुतामपि सागर-घर्घरा ।

कनकयामयि-गण्डकि-नर्मदा,

प्रतिदिनं कुशलं वरकन्ययोः ॥४॥

हरिपुरी-मथुरा च त्रिवेणिका,

बदरि-विष्णु-बटेश्वर-कौशला ।

मय-गयामपि-दर्दर-द्वारका,

प्रतिदिनं कुशलं वरकन्ययोः ॥५॥

भृगुमुनिश्च पुलस्ति च अंगिरा,

कपिलवस्तु-अगस्त्य च नारदः ।

गुरुवसिष्ठ-सनातन-जैमिनी,

प्रतिदिनं कुशलं वरकन्ययोः ॥६॥

ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः, सामवेदो ह्यथर्वणः ।

रक्षन्तु चतुरो वेदा, यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

इसके बाद विसर्जन और आशीर्वचन के पुष्प प्रदान कर कृत्य समाप्त
किया जाए ।

* * *

॥ वानप्रस्थ संस्कार ॥

ढलती उम्र का परम पवित्र कर्तव्य है- वानप्रस्थ । पारिवारिक जिम्मेदारियाँ जैसे ही हल्की होने लगें, घर को चलाने के लिए बड़े बच्चे समर्थ होने लगें और अपने छोटे भाई-बहनों की देखभाल करने लगें, तब वयोवृद्ध आदमियों का एक मात्र कर्तव्य यही रह जाता है कि वे पारिवारिक जिम्मेदारियों से धीरे-धीरे हाथ खींचें और क्रमशः वह भार समर्थ लड़कों के कंधों पर बढ़ाते चलें । ममता को परिवार की ओर से शिथिल कर समाज की ओर विकसित करते चलें । सारा समय घर के ही लोगों के लिये खर्च न कर दें; वरन् उसका कुछ अंश क्रमशः अधिक बढ़ाते हुए समाज के लिए समर्पित करते चलें ।

धर्म और संस्कृति का प्राण- वानप्रस्थ संस्कार भारतीय धर्म और संस्कृति का प्राण है । जीवन को ठीक तरह जीने की समस्या उसी से हल हो जाती है । युवावस्था के कुसंस्कारों का शमन एवं प्रायश्चित्त इसी साधना द्वारा होता है । जिस देश, धर्म, जाति तथा समाज में उत्पन्न हुए हैं, उनकी सेवा करने का, ऋण मुक्त होने का अवसर भी इसी स्थिति में मिलता है । इसलिए जिन नर-नारियों की स्थिति इसके लिए उपयुक्त हो, उन्हें वानप्रस्थ ले लेना चाहिए । एक प्रतिज्ञा बन्धन में बँध जाने पर व्यक्ति अपने जीवनक्रम को तदनुरूप ढालने में अधिक सफल होता है, बिना संस्कार कराये मनोभूमि पर वैसी छाप गहराई तक नहीं पड़ती । इसलिए कदम कभी आगे बढ़ते, कभी पीछे हटते रहते हैं । विवाह न होने तक प्रेमी का सहचरत्व संदिग्ध रहता है, पर जब विवाह हो गया, तो सब कुछ स्थायी एवं सुनियोजित हो जाता है । संस्कार के बिना पारमार्थिक भावनाओं का तूफान कभी शिथिल या समाप्त भी हो सकता है, पर यदि विधिवत् संस्कार कराया गया, तो अन्तःप्रेरणा तथा लोक-लाज दोनों ही निर्धारित गतिविधि अपनाने रहने की प्रेरणा देते रहेंगे, इसलिए शास्त्र मर्यादा के अनुरूप जिन्हें सुविधा हो, वे विधिवत् संस्कार करा लें । जिन्हें सुविधा न हो, वे बिना संस्कार के भी उपयुक्त प्रकार की रीति-नीति अपनाने के लिए यथा सम्भव प्रयत्न करते रहें ।

लोक शिक्षण की आवश्यकता- इस गतिविधि को अपनाने से समाज की भी भारी सेवा होती है । प्राचीनकाल में लोक निर्माण की सारी गतिविधियों एवं प्रवृत्तियों के संचालन का उत्तरदायित्व साधु-ब्राह्मण, वानप्रस्थों पर ही था, वे अपनी सारी शक्तियाँ परमार्थ भावना से प्रेरित होकर जनमानस को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त किये रहने में लगाये रहते थे । फलस्वरूप चारों ओर धर्म, कर्तव्य, सदाचार का ही वातावरण बना रहता था । वयोवृद्ध अनुभवी, परमार्थ-परायण लोकसेवियों का प्रभाव जन साधारण पर स्वभावतः बहुत गहरा पड़ता है, वह टिकाऊ भी होता है । ऐसे लोग जन-नेतृत्व करने के लिए जब धर्मतन्त्र का उचित उपयोग करते थे, तो सारे समाज में सत्प्रवृत्तियों के लिए उत्साह उमड़ पड़ता था । शिक्षा, स्वास्थ्य, सदाचार, न्याय, विवेक, वैभव, शासन, विज्ञान, सुरक्षा, व्यवस्था आदि सभी क्षेत्रों में वे वयोवृद्ध लोग ही नेतृत्व करते थे । इतने अधिक अनुभवी और धर्म परायण व्यक्तियों की निःशुल्क सेवा जिस देश या समाज को उपलब्ध होती हो, उसको संसार का मुकुटमणि होना ही चाहिए, प्राचीनकाल में ऐसी ही स्थिति थी । आज वानप्रस्थ की परम्परा नष्ट हुई, बूढ़े लोगों को लोभ-मोह के बन्धनों में ही ग्रसित रहना प्रिय लगा, तो फिर देश का पतन अवश्यम्भावी था, हुआ भी, हो भी रहा है ।

विशेष व्यवस्था- वानप्रस्थ संस्कार जितने व्यक्तियों का हो, उनके लिए समुचित आसन तैयार रखे जाएँ । वानप्रस्थ परम्परा को महत्व देने की दृष्टि से उनके लिए सुसज्जित मंच बनाया जा सके, तो बनाना चाहिए । पूजन की सामान्य सामग्री के साथ-साथ संस्कार के लिए प्रयुक्त विशेष वस्तुओं को पहले से देख-सँभाल लेना चाहिए । उनका विवरण इस प्रकार है-

* वानप्रस्थों को पीले रंग के वस्त्रों में पहले से तैयार रखना चाहिए ।

* पंचगव्य एक पात्र में पहले से तैयार रहे ।

* संस्कार कराने वाले जितने व्यक्ति हों उतने (१) पीले यज्ञोपवीत (२) पंचगव्य पान कराने के लिए छोटी कटोरियाँ (३) मेखला-कोपीन (कमरबन्द सहित लँगोटी) (४) धर्मदण्ड (हाथ में लेने योग्य गोल दण्ड) रूल (४) पीले दुपट्टे तैयार रखे जाएँ ।

* ऋषि पूजन के लिए सात कुशाएँ एक साथ बँधी हुई ।

* वेदपूजन हेतु वेद या कोई पवित्र पुस्तक पीले कपड़े में लपेटी हुई ।

* यज्ञपुरुष पूजन के लिए कलावा लपेटा हुआ नारियल का गोला ।
 * अभिषेक के लिए स्वच्छ लोटे या कलश एक जैसे, कम से कम ५, अधिक २४ तक हों, तो अच्छा है । अभिषेक के लिए कन्याएँ अथवा सम्माननीय साधकों को पहले से निश्चित कर लेना चाहिए ।

* विधिवत् स्नान करके, पीत वस्त्र पहनाकर वानप्रस्थ लेने वालों को संस्कार स्थल पर लाया जाए । प्रवेश एवं आसन ग्रहण के समय पुष्प-अक्षत वृष्टि के साथ मंगलाचरण बोला जाए ।

* सबके यथास्थान बैठ जाने पर नये-तुले शब्दों में संस्कार का महत्त्व तथा उसके महान् उत्तरदायित्वों पर सबका ध्यान दिलाकर भावनापूर्वक कर्मकाण्ड प्रारम्भ कराएँ ।

॥ विशेष कर्मकाण्ड ॥

* प्रारम्भ में षट्कर्म के बाद ही संकल्प करा दिया जाए । तिलक और रक्षासूत्र बन्धन के उपचार करा दिये जाएँ ।

* समय की सीमा का ध्यान रखते हुए सामान्य प्रकरण, पूजन आदि को समुचित विस्तार या संक्षेप में किया जाए ।

* रक्षाविधान के बाद विशेष कर्मकाण्ड इस प्रकार कराये जाएँ ।

॥ संकल्प ॥

दिशा एवं प्रेरणा- साधक हाथ में पुष्प, अक्षत, जल लेकर संकल्प करता है । संकल्प की सार्वजनिक घोषणा करता है कि आज से मैंने वानप्रस्थ व्रत ग्रहण कर लिया । अब मैं अपना या अपने परिवार का न रहकर समस्त समाज का बन गया । मेरा जीवन सार्वजनिक सम्पत्ति समझा जाए, उसे अपने या परिवार वालों के लाभ के लिए नहीं, वरन् विश्वमानस के लाभ की, आवश्यकता-पूर्ति का ध्यान रखते हुए माना जाए ।

क्रिया और भावना- संकल्प के लिए अक्षत, जल, पुष्प हाथ में दिये जाएँ । भावना करें कि देव संस्कृति के मेरुदण्ड वानप्रस्थ जीवन का शुभारम्भ करने के लिए अपने अन्तरंग और अन्तरिक्ष की सदशक्तियों से सहयोग की विनय करते हुए साहस भरी घोषणा कर रहे हैं -

ॐ तत्सदद्य श्रीमद् भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्री ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे भूर्लोकं जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तक- देशान्तर्गते.....क्षेत्रे मासानां मासोत्तमेमासे मासे ...पक्षे...तिथौ....वासरे....गोत्रोत्पन्नः ... नामाऽहं स्वजीवनं व्यक्तिगतं न मत्वा सम्पूर्ण- समाजस्य एतत् इति ज्ञात्वा, संयम- स्वाध्याय-उपासनेषु विशेषतश्च लोकसेवायां निरन्तरं मनसा वाचा कर्मणा च संलग्नो भविष्यामि इति संकल्पं अहं करिष्ये ।

॥ यज्ञोपवीत परिवर्तन ॥

नये जीवन की ओर पहला कदम त्याग, पवित्रता, तेजस्विता एवं परमार्थ के प्रतीक व्रतबन्ध स्वरूप यज्ञोपवीत का नवीनीकरण किया जाता है ।

यज्ञोपवीत का सिंचन करके पाँच देव शक्तियों के आवाहन स्थापन के उपरान्त उसे धारण कर लिया जाता है, पुराना उतार दिया जाता है । यह क्रम यज्ञोपवीत संस्कार प्रकरण में दिया गया है । सुविधा की दृष्टि से मन्त्रादि यहाँ भी दिये जा रहे हैं ।

॥ यज्ञोपवीत सिंचन ॥

मन्त्र बोलते हुए यज्ञोपवीत पर जल छिड़कें, पवित्र करें, नमस्कार करें -

ॐ प्रजापतेर्यत्सहजं पवित्रं, कार्पाससूत्रोद्भवब्रह्मसूत्रम् ।

ब्रह्मत्वसिद्ध्यै च यशः प्रकाशं जपस्य सिद्धिं कुरु ब्रह्मसूत्र ॥

॥ पंचदेवावाहन ॥

निम्नस्थ मन्त्रों के साथ यज्ञोपवीत में विभिन्न देवताओं का आवाहन करें -

(१) ब्रह्मा-ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्, विसीमतः सुरुचो वेन आवः । स बुध्न्याऽउपमाऽअस्याविष्टाः सतश्चयोनिमसतश्च विवः । ॐ ब्रह्मणे नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥

- १३३

(२) विष्णु-ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पा ११ सुरे स्वाहा । ॐ विष्णवे नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥

- ५१५

(३) शिव-ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवऽ, उतो तऽइषवे नमः । बाहुभ्यां मुत ते नमः । ॐ रुद्राय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥

-१६.१

(४) यज्ञपुरुष - यज्ञोपवीत खोल लें । दोनों हाथों की कनिष्ठा और अँगूठे से फँसाकर सीने की सीध में करें, फिर यज्ञ भगवान् का आवाहन मन्त्र बोलते हुए यज्ञ पुरुष का पूजन करें ।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । तेह नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः । ॐ यज्ञपुरुषाय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥

-३१.१६

(५) सूर्य- फिर दोनों हाथ ऊपर उठाकर सूर्यदेव का आवाहन करें—
ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो, निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेना, देवो याति भुवनानि पश्यन् । ॐ सूर्याय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ - ३३.४३

॥ यज्ञोपवीतधारण ॥

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं, प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं, यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

- पा० गू० सू० २.२.११

॥ जीर्णोपवीत विसर्जन ॥

ॐ एतावदिदं पर्यन्तं, ब्रह्म त्वं धारितं मया ।

जीर्णत्वात्ते परित्यागो, गच्छ सूत्रं यथासुखम् ॥

॥ पंचगव्यपान ॥

शिक्षण और प्रेरणा- पंचगव्य का पान पिछले जीवन में हुई भूलों के प्रायश्चित्त के लिए कराया जाता है । मैल हटे तो रंग चढ़े, दोषों की स्वीकारोक्ति, उनसे सम्बन्ध विच्छेद, जो प्रवृत्तियाँ इस ओर ले जाती हैं, उनका नियमन, भूलों से हुई हानियों को पूरा करने का साहस भरा शुभारम्भ-यह सब मिलकर प्रायश्चित्त कर्म पूरे होते हैं । प्रायश्चित्त से शुद्ध चित्त पर देव अनुग्रह सहज ही बरस पड़ते हैं ।

क्रिया और भावना- पंचगव्य की कटोरी बायें हाथ में लें और दाहिने हाथ की मध्यमा अँगुली से मन्त्रोच्चार के साथ उसे घोलें-चलाएँ । भावना करें कि इन गौ द्रव्यों को दिव्य चेतना से अभिमन्त्रित कर रहे हैं ।

ॐ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं, दधि सर्पिः कुशोदकम् ।

निर्दिष्टं पंचगव्यं, तु पवित्रं मुनिपुंगवैः ॥

कटोरी दाहिने हाथ में लेकर मन्त्रोच्चार के साथ पान करें । भावना करें कि दिव्य संस्कारों से पापों की जड़ पर प्रहार और पुण्यों को उभारने का क्रम आरम्भ हो रहा है, जो निष्ठापूर्वक चलाया जाता रहेगा ।

ॐ यत्त्वगस्थिगतं पापं, देहे तिष्ठति मामके ।

प्राशनात्पंचगव्यस्य, दहत्वग्निरिवेन्धनम् ॥

॥ मेखला-कोपीन धारण ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- अभिषिचन के उपरान्त वानप्रस्थ लेने वालों के हाथों में धर्मदण्ड और मेखला-कोपीन का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है । कोपीन धारण करने का अर्थ है- इन्द्रिय संयम बरतना । वानप्रस्थी को सन्तानोत्पादन बन्द कर देना चाहिए । अब तक की उत्पन्न हुई सन्तान का ही पालन-पोषण, विकास-निर्माण ठीक तरह हो जाए-यही बहुत है । पचास वर्ष की आयु के बाद बच्चे पैदा करते रहना, तो एक लज्जा की बात है, इससे कठिनाई बढ़ती है । बच्चे दुबले पैदा होते हैं, अनाथ रह जाते हैं तथा उनकी जिम्मेदारी मरते समय तक बनी रहने से समाजसेवा, परमार्थ साधना जैसे जीवन को सार्थक बनाने वाले प्रयोजनों के लिए अवसर ही नहीं मिलता । जिसके पीछे जितनी कम घरेलू जिम्मेदारी है, वह उतनी ही अच्छी तरह वृद्धावस्था का सदुपयोग कर सकेगा । फिर जिसने वानप्रस्थ धारण कर लिया, तो उसके लिए सन्तानोत्पादन एक विसंगति ही है, अतः उसे इस प्रकार की मर्यादाओं का पालन करने के लिए इन्द्रिय संयम का मार्ग अपनाना पड़ता है, उसी भावना का प्रतिनिधित्व कोपीन करती है, वानप्रस्थी उसे धारण करता है

कमर में रस्सी बाँधना कोपीन धारण के लिए तो आवश्यक है ही, साथ ही वह सैनिकों की तरह कमर कसकर, पेटी बाँधकर परमार्थ के मोर्चे पर आगे बढ़ने की मानसिक स्थिति का भी प्रतीक है । कमर कसना मुस्तैदी, सतर्कता,

तत्परता, निरालस्यता जैसी शारीरिक एवं मानसिक स्थिति बनाये रखने का प्रतीक है। निर्माण के दो मोर्चों पर एक साथ लड़ने वाले सैनिक को जिस सतर्कता से कार्य करना होता है, वैसा ही उसे भी करना चाहिए।

क्रिया और भावना- मेखला-कोपीन हाथों के सम्पुट में ली जाए। मन्त्रोच्चार के साथ भावना की जाए कि तत्परता, सक्रियता तथा संयमशीलता का वरण किया जा रहा है। मन्त्र पूरा होने पर उसे कमर में बाँध लें।

ॐ इयं दुरुक्तं परिबाधमाना, वर्णं पवित्रं पुनतीमऽआगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना, स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम्॥

- पार० गृ० सू० २.२.८

॥ धर्मदण्डधारण ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- वानप्रस्थी को हाथ में लाठी दी जाती है। गुरुकुलों में विद्याध्ययन करने वालों को वन्य प्रदेश की आवश्यकता के अनुरूप लाठी सुविधा की दृष्टि से आवश्यक भी होती थी। इसके अतिरिक्त यह धर्मदण्ड इस मन्तव्य का भी प्रतीक है कि राजा जिस प्रकार राज्याभिषेक के समय शासन सत्ता का प्रतीक राज-दण्ड छोटा लकड़ी का डण्डा हाथ में विधिवत् समारोह के साथ ग्रहण करता है, उसी प्रकार वानप्रस्थी संसार में धर्म व्यवस्था कायम रखने की अपनी जिम्मेदारी को हर घड़ी स्मरण रखे रहे और तदनु रूप अपना जीवनक्रम बनाये रहे, इसलिए भी यह धर्मदण्ड है।

क्रिया और भावना- दण्ड दोनों हाथों से पकड़ें। भूमि के समानान्तर हृदय की सीध में स्थिर करें। मन्त्र पूरा होने पर मस्तक से लगाएँ और दाहिनी ओर रख लें। भावना करें कि धर्म चेतना को जीवन्त, व्यवस्थित एवं अनुशासित रखने का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व स्वीकार किया जा रहा है। इसके साथ दिव्य शक्तियाँ ब्राह्मणत्व और ब्रह्मवर्चस प्रदान कर रही हैं।

ॐ यो मे दण्डः परापतद्, वैहायसोऽधिभूम्याम्।

तमहं पुनराददऽआयुषे, ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय॥

- पा० गृ० सू० २.२.१२

॥ पीतवस्त्रधारण ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- पीत-वस्त्र वीरों, त्यागियों और परमार्थ परायणों का बाना कहा गया है। अज्ञान, अभाव एवं अनीति से संघर्ष करने के लिए विचारशीलों को संत, सुधारक और शहीदों की भूमिका निभाने की तैयारी करनी पड़ती है। संस्कृति की प्रतिष्ठा, उसके सनातन गौरव की रक्षा के लिए यही रंग प्रेरणा देता रहा है।

क्रिया और भावना- दोनों हाथों की हथेलियाँ सीधी करके दुपट्टा लें। मन्त्र के साथ ध्यान करें कि सत्शक्तियों से पवित्रता, शौर्य और त्याग का संस्कार प्राप्त कर रहे हैं। मन्त्र पूरा होने पर दुपट्टा कन्धों पर धारण कर लें।
ॐ सूर्यो मे चक्षुर्वातः, प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि स, आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय॥

- अथर्व० ५.९.१९

॥ ऋषिपूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- सांस्कृतिक चेतना को जाग्रत्-जीवन्त रखने, जीवन के महत्वपूर्ण सिद्धांतों की शोध और उनका लाभ जन-जन तक पहुँचाने, ईश्वरीय उद्देश्यों के लिए समर्पित पवित्र और तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी उन महामानवों की परम्परा का अनुगमन, आत्मकल्याण-लोकमंगल दोनों दृष्टियों से अनिवार्य है, उनके अनुगमन के शुभारम्भ के रूप में पूजन किया जाता है।

क्रिया और भावना- हाथ में पुष्प-अक्षत लेकर ऋषियों का ध्यान कर मन्त्रोच्चारण के साथ भावना करें कि हम भी उन्हीं की परिपाटी के व्यक्ति हैं, उनके गौरव के अनुरूप बनने के लिए अपने पुरुषार्थ के साथ उनके अनुग्रह को जोड़ रहे हैं, उसे पाकर अन्याय उन्मूलन के मोर्चे को सुदृढ़ बनायेंगे।

ॐ इमावेव गोतमभरद्वाजा, वयमेव गोतमोऽयं भरद्वाजः,
इमावेव विश्वामित्रजमदग्नी, अयमेव विश्वामित्रोऽयं जमदग्निः,
इमावेव वसिष्ठकश्यपौ, अयमेव वसिष्ठोऽयं कश्यपौ
वागेवात्रिर्वाचाह्यन्नमद्यतेऽत्तिर्ह वै, नामैतद्यदत्रिरिति सर्वस्यात्ता
भवति, सर्वमस्यान्नं भवति य एवं वेद॥

- बृह० उ० २.२.४

की तरह प्रेरणा एवं सहारा देती रहेंगी। एक देवता का मन्त्र पूरा होने पर हाथ जोड़कर नमस्कार करें, फिर पहले जैसी मुद्रा बना लें।

ॐ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।
तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि। ॐ अग्नये नमः ॥१॥

ॐ वायो व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।
तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि। ॐ वायवे नमः ॥२॥

ॐ सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।
तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि। ॐ सूर्याय नमः ॥३॥

ॐ चन्द्र व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।
तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि। ॐ चन्द्राय नमः ॥४॥

ॐ व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।
तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि। ॐ इन्द्राय नमः ॥५॥

- मं० ब्रा० १६.१.१३

॥ अभिषेक ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- अभिषेक कृत्य ठीक उसी तरह का है, जैसा कि किसी राजा को राजगद्दी देते समय राज्याभिषेक किया जाता है। राजा का, दरबारी लोगों के संरक्षण में राज्याभिषेक होता है। प्रजाजनों और धर्मसंरक्षकों के द्वारा वानप्रस्थ का धर्माभिषेक किया जाता है। राजा अपनी प्रजा की सुरक्षा एवं साधन-व्यवस्था के भौतिक उपकरण जुटाता है, इसलिए उसे प्रजापालक कहकर सम्मानित किया जाता है। वानप्रस्थ प्रजा की आत्मिक सुरक्षा, सुव्यवस्था एवं सुख-शान्ति के उपकरण जुटाता है, उसे सन्मार्ग पर चलने की सद्भावना से ओत-प्रोत रहने की सत्प्रेरणाएँ प्रदान करता रहता है। यह अनुदान सभी भौतिक साधनों से अधिक महत्वपूर्ण है। राजा केवल एक सीमित प्रदेश में रहने वाली प्रजा की भौतिक सुरक्षा के लिए ही उत्तरदायी है, पर वानप्रस्थ के कन्धों पर संसार के समस्त मानवों-प्राणियों को न्याय एवं धर्म का प्रकाश उपलब्ध कराना है। भौतिक सुरक्षा की तुलना में आत्मिक प्रगति का मूल्य-महत्त्व असंख्य गुना बड़ा है। इसी प्रकार एक सीमित क्षेत्र में रहने वाली प्रजा के साज-सँभाल की तुलना में समस्त विश्व

के प्राणियों को सत्प्रेरणा देना कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। अतएव राजा की तुलना में धर्म-सेवी महात्मा का, वानप्रस्थ का पद तथा गौरव भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है, उसको अपना उत्तरदायित्व पूरी सावधानी से, जिम्मेदारी से निभाना है - इसी भावना को हृदयंगम कराने के लिए यह अभिषेक क्रिया की जाती है। समाज के सम्भ्रान्त, धर्मसेवी एवं विचारशील २४ व्यक्ति, जो यह अभिषेक करने खड़े हुए हैं, समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। जल से वानप्रस्थी का अभिषिचन करते हुए वे लोग समाज की ओर से नई भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं।

क्रिया और भावना- निर्धारित मात्रा में कन्याएँ या संस्कारवान् व्यक्ति कलश लेकर मन्त्रोच्चार के साथ साधकों का अभिषेक करें। भावना करें कि ईश्वरीय ऋषिकल्प जीवन के अनुरूप स्थापनाओं, बीजरूप प्रवृत्तियों को सींचा जा रहा है, समय पाकर वे फूलें- फलेंगी। जीवन के श्रेष्ठतम रस में भागीदारी के लिए परमात्म सत्ता से प्रार्थना की जा रही है, अनुदानों को धारण किया जा रहा है।

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः, ता न ऽऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः, तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः। ॐ तस्मा अरंगमाम वो, यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः॥

- ३६.१४-१६

॥ विशेष आहुति ॥

अभिषेक के बाद अग्निस्थापना करके विधिवत् यज्ञ किया जाए। स्विष्टकृत के पूर्व सात विशेष आहुतियाँ दी जाएँ।

भावना की जाए कि युग देवता एक विशाल यज्ञ चला रहे हैं। उस यज्ञ में समिधा, द्रव्य बनकर हम भी सम्मिलित हो रहे हैं, उनसे जुड़कर हमारा जीवन धन्य हो रहा है।

ॐ ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा, ब्रह्मणा स्वरवो मिताः।

अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो, ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः स्वाहा।

इदं अग्नये इदं न मम॥

- अथर्व० १९.४२.१

॥ प्रव्रज्या ॥

दिशा एवं प्रेरणा- परिव्राजक का काम है चलते रहना । रुके नहीं, लक्ष्य की ओर बराबर चलता रहे, एक सीमा में न बँधे, जन-जन तक अपने अपनत्व और पुरुषार्थ को फैलाए । जो परिव्राजक लोकमंगल के लिए संकीर्णता के सीमा बन्धन तोड़कर गतिशील नहीं होता, सुख-सुविधा छोड़कर तपस्वी जीवन नहीं अपनाता, वह पाप का भागीदार होता है ।

क्रिया और भावना- यज्ञ की चार परिक्रमाएँ चरैवेति मन्त्रों के साथ करें । भावना करें कि हम सच्चे परिव्राजक बनकर गतिशीलों को मिलने वाले दिव्य अनुदानों के उपयुक्त सत्पात्र बन रहे हैं ।

- (१) ॐ नाना श्रान्ताय श्रीरस्ति, इति रोहित शुश्रुम । पापो नृषद्वरो जन, इन्द्र इच्चरतः सखा । चरैवेति चरैवेति ॥
- (२) पुष्पिण्यौ चरतो जंघे, भूष्णुरात्मा फलग्रहिः । श्रेऽस्य सर्वे पाप्मानः, श्रमेण प्रपथे हताः । चरैवेति चरैवेति ॥
- (३) आस्ते भग आसीनस्य, ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः । शेते निपद्यमानस्य, चराति चरतो भगः । चरैवेति चरैवेति ॥
- (४) कलिः शयानो भवति, संजिहानस्तु द्वापरः । उत्तिष्ठँस्त्रेताभवति, कृतं संपद्यते चरन् । चरैवेति चरैवेति ॥
- (५) चरन् वै मधु विन्दति, चरन् स्वादुमुदुम्बरम् । सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं, यो न तन्द्रयते चरन् । चरैवेति चरैवेति ।

- ऐत० ब्रा० ७.१५

इसके बाद यज्ञ समापन पूर्णाहुति आदि उपचार कराये जाएँ । अन्त में मन्त्रों के साथ पुष्प, अक्षत की वर्षा करें, शुभ कामना-आशीर्वाद आदि दें ।

* * *

॥ अन्त्येष्टि संस्कार ॥

संस्कार प्रयोजन- भारतीय संस्कृति यज्ञीय आदर्शों की संस्कृति है । जिन्दगी जीने का सही तरीका यह है कि उसे यज्ञीय आदर्शों के अनुरूप जिया जाए । उसका जब अवसान हो, तो भी उसे यज्ञ भगवान् की परम-पवित्र गोदी में ही सुला दिया जाए । यह उचित है । जीवन की समाप्ति यज्ञ आयोजन में ही होनी चाहिए । यों स्थूल रूप से अग्नि जलाकर उसमें कोई वस्तु होमना यज्ञ या अग्निहोत्र कहलाता है, पर उसका तात्त्विक अभिप्राय परमार्थ प्रयोजन से ही है । जिस प्रकार मेवा, मिष्ठान्न, घृत, ओषधि आदि कीमती एवं आवश्यक वस्तुओं को वायु शुद्धि के लिए बिखेर दिया जाता है, उसी प्रकार मानव वैभव की समस्त विभूतियों को विश्वमंगल के लिए बिखेरते रह जाएँ, यही तात्त्विक यज्ञ है । अग्निहोत्र के द्वारा होताओं को यही भावना हृदयंगम करनी पड़ती है । स्वार्थपरता की पाशविकता से छुटकारा पाकर परमार्थ प्रवृत्तियों को विकसित करने का उत्साह जाग्रत् करना पड़ता है ।

मनुष्य शरीर में से प्राण निकल जाने पर उसका क्या किया जाए ? इसका उत्तर देर तक सोचने के बाद ऋषियों को इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि नर-तन का प्रयोजन किसी के लिए उत्सर्ग होने में सिद्ध होता है । इसका एक बृहत् प्रदर्शन करते हुए मृत शरीर की अन्त्येष्टि की जाए । सभी स्वजन-सम्बन्धी, मित्र-परिचित जो अन्तिम विदाई देने आएँ, उन्हें इस जीवनोद्देश्य को समझने का अधिक स्पष्ट अवसर मिले, इसलिए यज्ञ का एक विशाल आयोजन करते हुए, उसी में मृतक का शरीर होम दिया जाता है । जिन्दगी की सारी रीति-नीति, यज्ञदर्शन से ही प्रभावित रहती है, इसीलिए उसका अवसान भी उस महान् सत्य के साथ सम्बद्ध कर दिया जाए, तो यह उचित ही होगा । मृतक के स्वजनों को शोक होना स्वाभाविक है । इस शोक प्रवाह को यज्ञ आयोजन की व्यवस्था में मोड़ दिया जाए और तत्सम्बन्धित छोटे-बड़े कर्मकाण्डों में लगा दिया जाए, तो उनका चित्त बहलता है और शोक-सन्ताप को हलका करने का अवसर मिलता है । संस्कार से सम्बन्धित प्रेरणाएँ, जीवन के उपयोगी सिद्धान्तों को हृदयंगम करने में सहयोगी सिद्ध होती हैं, ऐसे ही अनेक प्रयोजन अन्त्येष्टि के हैं ।

आजकल लोग मुर्दे को ऐसे ही लकड़ियों के ढेर के बीच पटककर जला देते हैं। यह अव्यवस्था मृतक के प्रति उपेक्षा एवं असम्मान दिखाने जैसी है, इस अवसर पर उतावली या उपेक्षा शोभा नहीं देती। उचित यही है कि अन्त्येष्टि यज्ञ को उसी प्रेम और सम्मान के साथ सम्पन्न किया जाए। इस संस्कार का हर कार्य ठीक ढंग से, ठीक व्यवस्था एवं सावधानी के साथ करना चाहिए, जिसमें कि स्वजनों का प्रेम और सम्मान टपकता हो।

पूर्व व्यवस्था- अन्त्येष्टि संस्कार के समय शोक का वातावरण होता है। अधिकांश व्यक्ति ठीक प्रकार सोचने-करने की स्थिति में नहीं होते, इसलिए व्यवस्था पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। सन्तुलित बुद्धि के अनुभवी व्यक्तियों को इसके लिए सहयोगी के रूप में नियुक्त कर लेना चाहिए। व्यवस्था के सूत्र इस प्रकार हैं-

* मृतक के लिए नये वस्त्र, मृतक शय्या (ठठरी), उस पर बिछाने-उढ़ाने के लिए कुश एवं वस्त्र (मोटक) तैयार रखें।

* मृतक शय्या की सज्जा के लिए पुष्प आदि उपलब्ध कर लें।

* पिण्डदान के लिए जौ का आटा एक पाव एवं जौ, तिल, चावल आदि मिलाकर तैयार कर लें। यदि जौ का आटा न मिले, तो गेहूँ के आटे में जौ मिलाकर गूँध लिया जाता है।

* कई स्थानों पर संस्कार के लिए अग्नि घर से ले जाने का प्रचलन होता है। यदि ऐसा है, तो उसकी व्यवस्था कर ली जाए, अन्यथा श्मशान घाट पर अग्नि देने अथवा मन्त्रों के साथ माचिस से अग्नि तैयार करने का क्रम बनाया जा सकता है।

* पूजन की थाली, रोली, अक्षत, पुष्प, अगरबत्ती, माचिस आदि उपलब्ध कर लें।

* सुगन्धित हवन सामग्री, घी, सुगन्धित समिधाएँ, चन्दन, अगर-तगर, सूखी तुलसी आदि समयानुकूल उचित मात्रा में एकत्रित कर लें।

* यदि वर्षा का मौसम हो, तो अग्नि प्रज्वलित करने के लिए सूखा फूस, पिसी हुई राल, बूरा आदि पर्याप्त मात्रा में रख लेने चाहिए।

* पूर्णाहुति (कपाल-क्रिया) के लिए नारियल का गोला छेद करके घी डालकर तैयार रखें।

* वसोर्धारा आदि घृत की आहुति के लिए एक लम्बे बाँस आदि में लोटा या अन्य कोई ऐसा पात्र बाँधकर तैयार कर लिया जाए, जिससे घी की आहुति दी जा सके।

क्रम व्यवस्था- अन्त्येष्टि संस्कार भी अन्य संस्कारों जैसा दिखावा बनकर रह गया है। इसे भी संस्कार की गरिमा दी जानी चाहिए। मृतात्मा की सद्गति के लिए किये जाने वाले कर्मकाण्ड के समय, उसे कराने वाले पुरोहित, करने वाले सम्बन्धी तथा उपस्थित हितैषियों आदि सभी का भावनात्मक एकीकरण किया जाना आवश्यक होता है।

इस कर्मकाण्ड के समय संचालक को विशेष विवेकशीलता तथा सन्तुलित वास्तविकता का प्रमाण देना होता है। मृत्यु के साथ अत्यन्त महत्वपूर्ण दर्शन एवं प्रेरणाएँ जुड़ी हैं; किन्तु शोक के वातावरण में केवल आदर्शवादिता के भाषण बेतुके लगते हैं, इसलिए हर महत्वपूर्ण शिक्षण संवेदनाओं के साथ जोड़कर सन्तुलित शब्दों में किया जाना चाहिए।

संस्कार के दो वर्ग किये जा सकते हैं-(१) घर पर और मार्ग में, (२) श्मशान घाट पर किये जाने वाले संस्कार। पूर्व व्यवस्था के संकेतों के अनुसार सारी व्यवस्था घर पर ही जुटा लेनी चाहिए। घर के अन्दर मृतक को नहला-धुलाकर, वस्त्र पहनाकर तैयार करने का क्रम तथा बाहर शय्या (ठठरी) तैयार करने, आवश्यक सामग्री जुटाने का क्रम एक साथ चालू किया जा सकता है। अन्दर शव संस्कार कराके, संकल्प, पिण्डदान करके शव बाहर लेकर शय्या (ठठरी) पर रखा जाता है, वहाँ प्राथमिक पुष्पांजलि देकर श्मशान यात्रा आरम्भ कर दी जाती है।

॥ शव संस्कार ॥

दिशा एवं प्रेरणा- भारतीय संस्कृति, देव संस्कृति जीवन के अनन्त प्रवाह को मान्यता देती है। मृत्यु जीवन को छीन लेने वाली भयावनी वस्तु नहीं, जीवन का जीर्णोद्धार करने वाली हितकारी प्रक्रिया मानी जाती है। जब आत्मा महत्-तत्त्व की ओर बढ़ गई, तो शरीरगत पंचतत्त्वों को भी पंच महाभूतों में परिवर्तित करा देते हैं। जीवात्मा को सद्गति देने के साथ कायागत पंचतत्त्वों को पंच महाभूतों में मिलाने के लिए यज्ञीय परिपाटी अपनाई जाती है। इसलिए शव को पवित्र किया जाता है।

शोक इस पुण्य प्रक्रिया में बाधक बनता है। दुःख स्वाभाविक है। दुःख उसे होता है, जिसे मृतात्मा से स्नेह हो, उस स्नेह को जीवन्त रखना चाहिए, परन्तु उसे शोकपरक बनाने की अपेक्षा मृतात्मा की सदगति को महत्त्व देते हुए निर्धारित कर्मकाण्ड में भावनात्मक योग सभी को देना चाहिए। सभी का ध्यान आकर्षित करके, संस्कार के अनुरूप वातावरण बनाकर क्रम आरम्भ किया जाए। प्रथा के अनुसार कहीं पर घर में ही स्नान कराके ले जाते हैं कहीं पर नदी समीप हो, तो वहाँ स्नान कराते हैं, घर पर स्नान कराने में यह लाभ है कि स्वच्छ वस्त्र भी वहाँ आसानी से पहनाये जा सकते हैं।

क्रिया और भावना- घर में भूमि धोकर गोबर से लीपकर शुद्ध करके, इस पर स्वस्तिक आदि लिखकर तैयार रखें। शव को शुद्ध जल, गंगाजल से स्नान कराकर या गीले कपड़ों से पोंछकर, शुद्ध वस्त्र पहनाकर उस स्थान पर लिटाएँ। मृतक कर्म करने वाले पवित्र जल लेकर शव पर सिंचन करें। भावना करें कि शरीरगत पंचभूतों को यज्ञ के उपयुक्त बना रहे हैं। भूल से इनका उपयोग गलत कार्यों में हुआ, तो शरीर यज्ञ के पूर्व उन कुसंस्कारों को दूर कर रहे हैं। 'ॐ आपोहिष्ठा' इत्यादि मन्त्र बोलकर शव स्नान कराएँ।

अब चन्दन एवं पुष्पादि से शव को सजाएँ। भावना करें कि पंचभूतों को ऐसा संस्कार दे रहे हैं, जो भविष्य में किसी का शरीर बने, तो उसके आदर्श जीवन में सहायक सिद्ध हों। यह मन्त्र बोलते हुए शव को सजाएँ -

ॐ यमाय सोमं सुनुत, यमाय जुहुता हविः।

यमं ह यज्ञो गच्छति, अग्निदूतो अरंकृतः ॥- ऋ० १०.१४.१३

इसके बाद अन्त्येष्टि संस्कार करने वाला दक्षिण दिशा को मुख करके बैठे। पवित्री धारण करें फिर हाथ में यव-अक्षत, पुष्प, जल, कुश लेकर संस्कार का संकल्प करें-

..... नामाऽहं (मृतक का नाम) प्रेतस्य प्रेतत्त्व - निवृत्त्या उत्तम लोकप्राप्त्यर्थं और्ध्वदेहिकं करिष्ये।

संकल्प के बाद प्रथम पिण्डदान करें (मन्त्र आगे है) फिर शव उठाकर बाहर शव शय्या (ठठरी) तक लाएँ। भावना करें कि यह यात्रा सभी को करनी है, इसलिए अपने कर्मों को, करने योग्य कर्मों की तुलना में तौलते रहें। मन्त्र इस प्रकार है -

ॐ वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त शरीरम्।

ॐ क्रतो स्मर कृत १३ स्मर, क्रतो स्मर कृत १३ स्मर ॥ ईश० १७

शय्या पर शव लिटाने के बाद उसे बाँधें, सज्जित करें और दूसरा पिण्ड अर्पित करें। अब सभी पुष्पांजलि दें। हाथ में पुष्प लेकर स्वस्तिवाचन बोलें। भावना करें- मृतक की सदगति के लिए तथा स्वयं सदगति की पात्रता पाने योग्य कर्म करने की प्रबल आकांक्षा व्यक्त करते हुए सूक्ष्म जगत् की दिव्य शक्ति का सहयोग भरा वातावरण निर्मित कर रहे हैं। स्वस्तिवाचन के बाद पुनः ॐ क्रतो स्मर.. मन्त्र बोलते हुए पुष्प अर्पित करें। तत्पश्चात् ॐ अग्ने नय सुपथा राये... मन्त्र बोलते हुए शव यात्रा प्रारम्भ की जाए।

॥ पिण्डदान ॥

दिशा एवं प्रेरणा- अन्त्येष्टि संस्कार के साथ पाँच पिण्डदान किये जाते हैं, यह एक कठोर सत्य को मान्यता देना है। जीव चेतना शरीर से बँधी नहीं है, उसे सन्तुष्ट करने के लिए शरीरगत संकीर्ण मोह से ऊपर उठना आवश्यक है। जीवात्मा की शान्ति के लिए व्यापक जीव चेतना को तुष्ट करने के लिए मृतक के हिस्से के साधनों को अर्पित किया जाता है। पिण्डदान इसी महान् परिपाटी के निर्वाह की प्रतीकात्मक प्रक्रिया है।

क्रिया और भावना- एक-एक पिण्ड दाहिने हाथ में लिया जाए। उस पर पुष्प, कुश, जल, यव, तिलाक्षत डालकर मन्त्र बोला जाए। मन्त्र समाप्ति पर अँगूठे की ओर से (पितृ तीर्थ मुद्रा से) पिण्ड निर्धारित स्थान पर चढ़ाया जाए। भावना करें कि जीवात्मा का हित-सन्तोष शरीर तक ही सीमित नहीं, इसके बाद भी है, उसी व्यापक हित और सन्तोष के लिए प्रयास किया जा रहा है।

प्रथम पिण्ड घर के अन्दर शव संस्कार करके संकल्प के बाद दिया जाए। पिण्ड पेड़ू (कटि प्रदेश) पर रखा जाए।

..... नामाऽहं... (मृतक नाम) मृतिस्थाने शवनिमित्तको ब्रह्मदैवतो वा, एष ते पिण्डो, मया दीयते, तवोपतिष्ठताम्।

दूसरा पिण्ड बाहर शव शय्या (ठठरी) पर शव स्थापना के बाद दिया जाए। पिण्ड पेट पर रखा जाए।

.....नामाऽहं....(मृतक नाम)द्वारदेशे, पान्थ निमित्तको, विष्णुदैवतो वा, एष ते पिण्डो, मया दीयते, तवोपतिष्ठताम् ।
तीसरा पिण्ड मार्ग में चत्वर (चौराहा) स्थल पर दिया जाए । पिण्ड पेट और वक्ष की सन्धि पर रखा जाए ।

....नामाऽहं.....(मृतकनाम)चत्वरस्थाने खेचर-निमित्तक एष ते पिण्डो, मया दीयते, तवोपतिष्ठताम् ।

चौथा पिण्ड श्मशान पर शव रखकर छाती पर अर्पित करें ।

.....नामाऽहं....(मृतकनाम) श्मशानस्थाने विश्रान्ति-निमित्तको, भूतनाम्ना रुद्रदैवतो वा एष ते पिण्डो मया दीयते तवोपतिष्ठताम् ।

पाँचवाँ पिण्ड चितारोहण के बाद किया जाए । पिण्ड सिर पर रखें ।

....नामाऽहं....(मृतकनाम) चितास्थाने वायु निमित्तको यम दैवतो वा एष ते पिण्डो मया दीयते तवोपतिष्ठताम् ॥

॥ भूमिसंस्कार ॥

दिशा एवं प्रेरणा- श्मशान घाट पर पहुँचकर शव उपयुक्त स्थान पर रखें और चौथा पिण्ड दें, साथ ही चिता सजाने के लिए स्थान झाड़-बुहार कर साफ करें, जल से सिंचन करें, गोबर से लीपें, उसे यज्ञ वेदी की तरह स्वच्छ और सुरुचिपूर्ण बनाएँ । एक टोली पहले से पहुँचकर कार्य सम्पन्न करके रखे, चिता सजाने के पूर्व मन्त्रों से उपचार किया जाए । धरती माता के ऋण को याद रखा जाए । उसी की गोद से उठे थे, उसी में सोना है, उसे बदनाम करने वाले आचरण हमसे न बन पड़ें । धरती माँ से श्रेष्ठता के संस्कार माँगते रहें । श्मशान भूमि-जो जीवन को नया मोड़ देती है, जहाँ सिद्धियाँ निवास करती हैं, उसे प्रणाम किया जाए, पवित्र बनाकर प्रयुक्त किया जाए ।

क्रिया और भावना- तैयार भूमि के पास अन्त्येष्टि करने वाला व्यक्ति जाए, उसकी परिक्रमा हाथ जोड़कर करे तथा उसे नमन करे । भावना करे कि यह सिद्धिदायिनी भूमि मृतात्मा को वांछित उपलब्धियाँ देने वाली सिद्ध हो । मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ देवस्य त्वा सवितुः, प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां, पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये, दधामि बृहस्पतेष्ट्वा, साम्राज्ये नाभिविचाम्यसौ ॥

- ९.३०

भूमि सिंचन - पूजनम् - अब जल पात्र लेकर मन्त्र के साथ कुशाओं से भूमि का सिंचन करें । भावना करें कि इस यज्ञ भूमि को मन्त्र शक्ति से पवित्र किया जा रहा है -

ॐ शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो, मणिवालस्तऽआश्विनाः, श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते, रुद्राय पशुपतये कर्णा, यामाऽअवलिप्ता रौद्रा, नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ - २४.३

॥ ॐकारलेखन ॥

अगले मन्त्र के साथ मध्यमा अँगुली से भूमि पर ॐ लिखें, पूजित करें । भावना करें कि भूमि के दिव्य संस्कारों को उभारा बनाया जा रहा है -

ॐ ओमासश्र्वर्षणीधृतो, विश्वे देवासऽआगत । दाश्वाश्च सो दाशुषः सुतम् । उपथामगृहीतोऽसि, विश्वेभ्यस्त्वा, देवेभ्यः ऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥

- ७.३३

॥ मर्यादाकरण (समिधारोपण) ॥

यज्ञ-कुण्ड या वेदी के चारों ओर मेखलाएँ बनाई जाती हैं, उस आवश्यकता की पूर्ति चार बड़ी-बड़ी लकड़ियाँ चारों दिशाओं में स्थापित करके की जाती हैं । ये लकड़ियाँ चिता के चारों छोरों पर उसकी सीमा बनाने वाली होनी चाहिए । शेष लकड़ियाँ इन चारों के भीतर ही रखी जाती हैं । दाह क्रिया करने वाला व्यक्ति समिधाओं को स्थापित करे ।

पहली समिधा (पूर्व दिशा में)

दिशा एवं प्रेरणा- जीवन चारों दिशाओं में मर्यादित है । व्यक्ति की हर दिशा में मर्यादा है, उसे उसी घेरे में, उसी दायरे में रहना चाहिए । मर्यादाओं का उल्लंघन कर उच्छृंखल नहीं बनना चाहिए । यह निर्देश मृत शरीर में चारों ओर चार समिधाएँ स्थापित करके किया जाता है । पहली मर्यादा धन सम्बन्धी है, धन उसे उपाजित तो करना चाहिए, पर अनीतिपूर्वक नहीं । साथ ही इतना

अधिक भी नहीं, जिससे समाज में असमानता, ईर्ष्या तथा विलासिता उत्पन्न हो। शरीर रक्षा, कुटुम्ब पालन आदि कार्यों के लिए आजीविका उपार्जन आवश्यक है, पर उसकी उपयोगिता, आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही समझी जाए। ऐसा न हो कि संग्रह का लालच बढ़े और उसे गर्व-गौरव का विषय बना लिया जाए। धनी बनने की इच्छा यदि महत्वाकांक्षा का रूप धारण कर ले, तो मनुष्य जीवन जिस प्रयोजन के लिए मिला है, उसके लिए न तो अवकाश मिलेगा, न इच्छा ही रहेगी। इसलिए एक लकड़ी पूर्व दिशा में धन की आकांक्षा सीमित रखने के लिए रखी जाती है।

क्रिया और भावना- मन्त्रोच्चार के साथ पूर्व दिशा में समिधा स्थापित करें। सभी उपस्थित जन भावना करें कि धन-साधनों के उपयोग की मर्यादा स्वीकार करते हैं। मृतक से उस दिशा में कुछ भूलें हुई हों, तो उसके हितैषी के नाते अपने साधनों के एक अंश को सत्कार्य में लगाकर, उसका पुण्य समिधा के साथ स्थापित करते हैं, मृतात्मा की सद्गति की कामना करते हैं। इसका मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ प्राची दिग्ग्निरधिपतिरसितो, रक्षितादित्या इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽइषुभ्यो नमऽएभ्यो
अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

- अथर्व० ३.२७.१

दूसरी समिधा (दक्षिण दिशा में)

शिक्षण एवं प्रेरणा- दूसरी समिधा काम सेवन सम्बन्धी मर्यादा का पालन करने की है। वासना की आग ऐसी है, जिसमें भोग का ईंधन जितना ही डाला जायेगा, वह उतनी ही भड़कती जायेगी, इसलिए मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य और आत्मबल तीनों ही दृष्टियों से काम सेवन को जितना अधिक मर्यादित किया जा सके, उतना ही उत्तम है। ब्रह्मचर्य पालन की आवश्यकता व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए है। जीवन रस का अनावश्यक क्षरण करने से व्यक्ति शरीर, मन और आत्मा तीनों से ही दुर्बल बनता है। नारी की शरीर रचना भी अन्य जीव-जन्तुओं की तरह ही है, जो यदाकदा ही काम सेवन के दबाव को सहन कर सकती है। सन्तानोत्पादन में नारी की शक्ति को भारी क्षति पहुँचती है। बढ़ती हुई जनसंख्या, खाद्य संकट, बेकारी

आदि अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ समाज के लिए उत्पन्न करती है। गृहस्थ का आर्थिक ढाँचा भी बढ़ती हुई सन्तान से चरमरा जाता है। इसलिए ब्रह्मचर्य पालन हर दृष्टि से आवश्यक है।

क्रिया और भावना- मन्त्रोच्चार के साथ दक्षिण दिशा में समिधा स्थापित की जाए। सभी भावना करें कि कामवासना की मर्यादा का सिद्धांत अंगीकार करते हैं। मृतक से इस दिशा में कुछ भूलें हुई हों, तो उसके परिजन के नाते, उनके परिष्कार के लिए तपश्चर्यापूर्वक परिष्कार करेंगे। न्यूनतम तीन दिन तक दृष्टि और आचरण की पवित्रता बनाये रखने का तप करते हुए मृतात्मा की सद्गति की प्रार्थना करेंगे। यह पुण्य दूसरी समिधा के साथ स्थापित करते हैं। मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ दक्षिणा दिग्निन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी, रक्षिता पितरऽ
इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽइषुभ्यो
नमऽएभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

- अथर्व० ३.२७.२

तीसरी समिधा (पश्चिम दिशा में)

दिशा एवं प्रेरणा- तीसरी समिधा यश-मर्यादा की है। लोक-लाज के कारण बुरे कार्यों से बचे रहने और सत्कर्म करने के फलस्वरूप लोक-सम्मान का सुख मिलने की इच्छा एक सीमा तक उचित है, पर जब यह उच्छृंखल हो उठती है, तो अवांछनीय उपाय सोचकर उच्च पदवी पाने की लिप्सा उठ खड़ी होती है, तब सम्मान के वास्ते अधिकारियों को एक ओर धकेल कर उनका स्थान स्वयं ग्रहण करने की दुरभिसन्धि की जाने लगती है। आज पदलोलुप व्यक्ति इस प्रकार के पारस्परिक संघर्ष में लगे हुए हैं और जिन संस्थाओं के समर्थक होने का दम भरते हैं, उन्हीं को नष्ट करने में प्रवृत्त हैं। भाषा, जाति, सम्प्रदाय आदि की आड़ लेकर तथाकथित नेता लोग अपना व्यक्तिगत-गौरव बढ़ाने के लिए देश के भाग्य-भविष्य के साथ खिलवाड़ करने में लगे हुए हैं। राजपाट लेने के नाम पर इतिहास के पृष्ठों पर मनुष्य की नृशंसता का वीभत्स चित्र देखा जा सकता है। चुनावों में करोड़ों रुपया इसी यश लोलुपता के लिए पानी की तरह बहा दिया जाता है, जो यदि किन्हीं रचनात्मक कार्यों में लगता, तो उसका बहुत ही श्रेष्ठ सत्परिणाम होता। फैशन, श्रृंगार,

अमीरी के ठाठ-बाट तथा ढोंग बनाकर वाह-वाही लूटने की इच्छा से ढेरों पैसा नष्ट करते हैं। अहंकार का पोषण करने वाले यह सभी प्रपंच व्यक्ति तथा समाज के लिए हानिकारक हैं। अतएव मनीषियों ने यश-कामना को मर्यादित रखने का निर्देश दिया है। तीसरी मर्यादा इसी की है।

क्रिया और भावना- तीसरी समिधा मन्त्रोच्चार करते हुए पश्चिम दिशा में स्थापित करें। सभी जन लोकैषणा को सीमित रखने का महत्त्व स्वीकार करें। भावना करें कि इस दिशा में मृतक से कोई भूलें हुई हों, तो उसके ही हितचिन्तक होने के नाते उसके परिष्कार का प्रयास करेंगे। बिना यश की कामना किये तीन घण्टे जन-जन तक सद्विचार-सत्साहित्य पहुँचायेंगे। उस पुण्य को तीसरी समिधा के साथ स्थापित करते हैं। मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः, पृदाकू रक्षितान्नमिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽङ्गुभ्यो नमऽएभ्यो
अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

- अथर्व० ३.२७.३

चौथी समिधा (उत्तर दिशा में)

दिशा एवं प्रेरणा- चौथी समिधा द्वेष को मर्यादित रखने की है। संसार में विभिन्न प्रवृत्ति के लोग रहते हैं। उनके विचार एवं कार्य अपनी रुचि एवं मान्यता से मेल नहीं खाते, तो बहुधा झगड़े की सूरत बन जाती है। अपने से प्रतिकूल को पसन्द नहीं किया जाता है और उसे नष्ट करने की इच्छा होती है। यह क्रोध ही क्लेश और द्वेष का कारण बनता है। यह मतभिन्नता ही संसार में हो रहे लड़ाई-झगड़ों की जड़ है। असहिष्णुता के कारण छोटी-छोटी बातों पर लोग एक दूसरे की जान के ग्राहक व भयंकर शत्रु बन जाते हैं। इस असहिष्णुता की प्रबलता के कारण लोग दस में से नौ बातों की सहमति, समानता और एकता को नहीं देखते, वरन् जो शेष एक की भिन्नता थी, उसी को आगे रखकर दुर्भाव उत्पन्न करते हैं।

असहिष्णुता को, द्वेष को मर्यादित रखने की मानवीय परम्परा को निबाहने के लिए मनुष्य संयम बरते, इसकी शिक्षा उपस्थित लोगों को देने के लिए, मानव जीवन के मर्यादा-विज्ञान को समझाने के लिए चौथी बड़ी समिधा उत्तर दिशा में स्थापित की जाती है।

क्रिया और भावना- चौथी समिधा उत्तर दिशा में मन्त्र के साथ रखी जाए। सभी भावना करें कि द्वेष-दुर्भाव पर अंकुश रखने का पाठ हृदयंगम कर रहे हैं। मृतक से इस प्रकरण में भूलें हुई हों, तो उनके शमन के लिए अपना उत्तरदायित्व निश्चित करते हैं। ऐसे व्यक्ति जिनसे अपनी पटती नहीं, उनके द्वारा किये जाने वाले किसी श्रेष्ठ कार्य में स्वयं खुले मन से सहयोग देंगे। इस तप-पुण्य को समिधा के साथ स्थापित करते हैं।

ॐ उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः, स्वजो रक्षिताशनिरिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽङ्गुभ्यो नमऽएभ्यो
अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

- अथर्व० ३.२७.४

॥ चितारोहण ॥

मर्यादा की समिधाएँ स्थापित करने के बाद अनुभवी व्यक्ति चिता सजाएँ। चिता चूँकि एक प्रकार से यज्ञ प्रक्रिया है, इसलिए उसमें वे ही लकड़ियाँ काम आती हैं जो आम तौर से यज्ञ कार्यों में प्रयुक्त होती हैं। वट, पीपल, गूलर, ढाक, आम, शमी आदि पवित्र काष्ठों की ही समिधाएँ यज्ञ में काम आती हैं, यथाशक्ति वे ही मृतक शरीर की अन्येष्टि में काम आनी चाहिए। अगर, तगर, देवदारु, चन्दन आदि के सुगन्धित काष्ठ मिल सकें, तो उन्हें भी चिता में सम्मिलित कर लेना चाहिए।

ठठरी पर रखे हुए मृत शरीर को उठा कर चिता पर सुलाया जाए, तब सम्मिलित स्वर से संस्कार कर्त्ता "ॐ अग्ने नय सुपथा राये.....मन्त्र उच्चारण करें। मन्त्र में अग्निदेव से जीवन को उस ओर ले चलने की प्रार्थना की गई है, जिस ओर सज्जन लोग प्रयाण करते हैं। शान्ति-सद्गति की ओर जीवन की भावी यात्रा चल पड़े, यही ईश्वर प्रार्थना एवं शुभकामना उपस्थित लोगों द्वारा की जानी चाहिए, वही की भी गई है। ज्ञान, प्रकाश, तेज, संयम, पुरुषार्थ जैसे गुणों को अग्नि का प्रतिनिधि माना गया है। इनका जो भी आश्रय लेंगे, वे उसी प्रकार ऊपर उठेंगे; जिस प्रकार अग्नि में जलाये हुए शरीर के अणु-कण वायुभूत होकर ऊपर आकाश में उड़ते चले जाते हैं।

चितारोहण के बाद पूर्व निर्धारित मन्त्र से पाँचवाँ पिण्ड दिया जाए, फिर शव के ऊपर भी लकड़ियाँ जमा दी जाएँ।

॥ शरीर यज्ञ आरम्भ ॥

अग्नि स्थापना- कुशाओं के पुंज में अंगार या जलते कोयले रखकर उसे हवा में झंझर-उधर हिलाया जाए, अग्नि प्रज्वलित हो उठेगी। इस अग्नि समेत एक परिक्रमा मृतक की करके उसे उसके मुख के पास अथवा पूर्व निश्चित ऐसे स्थान पर रख दिया जाए, जहाँ लकड़ियों में आसानी से अग्नि प्रविष्ट हो सके। ऐसा स्थान पहले से ही वायु के लिए खाली और पतली, छोटी, जल्दी आग पकड़ने वाली समिधाओं से बनाया गया हो। अग्नि स्थापन के समय ॐ भूर्भुवः स्व द्यौरिव भूम्ना.....मन्त्र का पाठ किया जाए फिर उद्बुध्यस्वान्.....मन्त्र के साथ अग्नि तीव्र करने के लिए आवश्यकतानुसार राल का चूरा आदि झोंकना चाहिए, हवा करनी चाहिए।

घृताहुति- अग्नि प्रज्वलित हो जाए, तब घी की सात आहुतियाँ दी जाएँ। इस कार्य के लिए लम्बी डण्डी का चम्मच प्रयोग किया जाए। 'ॐ इन्द्राय स्वाहा' इत्यादि मन्त्रों से सात घृत आहुतियाँ वही व्यक्ति करे, जिसने अग्नि प्रवेश कराया हो। यह मृतक का पुत्र या निकटतम सम्बन्धी होता है।

सामान्याहुति- घृताहुति के बाद सभी लोग सुगन्धित हवन सामग्री से गायत्री मन्त्र बोलते हुए सात आहुतियाँ समर्पित करें, इसके बाद शरीर यज्ञ की विशेष आहुतियाँ डाली जाती हैं।

॥ विशेष आहुति ॥

दिशा एवं प्रेरणा- शरीर यज्ञ का प्रधान मन्त्र 'ॐ आयुर्यज्ञेन कल्पतां.....' हमें इस तथ्य को हृदयंगम करने और व्यावहारिक जीवन में समाविष्ट करने का निर्देश करता है। मन्त्र में निर्देश है कि- मानवीय आयुष्य यज्ञ के लिए हो, वह जब तक जिए परमार्थ के लिए जिए, विराट् ब्रह्म की पूजा करता रहे। मैं अपने लिए नहीं समस्त समाज के लिए जीता हूँ- यही सोचता रहे। प्राण, चक्षु, श्रोत्र, वाणी, मन, आत्मा आदि यज्ञ के लिए ही समर्पित रहें।

“प्राण यज्ञ के लिए हो। साहस, शक्ति, क्षमता, चातुर्य और प्रतिभा का समस्त कोष लोकहित की बात सोचने में, आयोजन करने में तथा प्रवृत्त रहने में खर्च किया जाए। इन्हें ही पाँच प्राण-क्रमशः प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान कहकर सभी की आहुतियाँ दी जाती हैं।

चक्षु यज्ञ के लिए हों, अर्थात् जो कुछ देखें सदउद्देश्य के लिए देखें। अश्लीलता की विकार भरी दूषित दृष्टि से, भिन्न लिंग वाले नर या नारी को न देखें। पवित्र और प्रेम भरी दृष्टि से हर व्यक्ति और वस्तु को देखें और उसे अधिक सुन्दर- सुविकसित बनाने का प्रयत्न करें। छिद्रान्वेषण न करें, वरन् गुणों को देखें, ढूँढ़ें तथा अपनाएँ। सत्साहित्य पढ़ें, प्रेरणाप्रद दृश्यों को देखें। जो दुर्भाव उत्पन्न करें, ऐसे दृश्यों से नेत्रों को बचाये रखें।

‘श्रोत्र यज्ञ के लिए हों अर्थात् जो सुनें वह श्रेयस्कर एवं सद्भाव जाग्रत करने वाला ही हो। ऐसे वचन न सुनें, जो कुमार्ग पर ले जाते हों’।

‘वाणी यज्ञ के लिए बोलें, अर्थात् मधुर, शिष्ट, उत्साहवर्धक, श्रेयस्कर वचन कहने का अभ्यास डाला जाए, मतभेद या अप्रिय प्रसंग आने पर भी वाणी की शालीनता को हाथ से न जाने दिया जाए। दूसरों को कुमार्ग पर ले जाने वाली सलाह, द्वेष एवं रोष उत्पन्न करने वाली निन्दा, चुगली, व्यंग्य, उपहास एवं मर्म भेदन करने वाली वाणी हमारी कदापि न हो। असत्य और निरर्थक भी न बोलें। जिह्वा का संयम सबसे बड़ा तप माना गया है। उसका अर्थ चटोरेपन से बचना ही नहीं, वरन् नपी-तुली सुसंगत एवं श्रेयस्कर वाणी बोलना भी है- ऐसे वाक् संयम को ही मौन कहते हैं।

“मन को यज्ञ के लिए गतिशील करें”। मन में अनुचित, अवांछनीय बातें न आने दें। कुविचारों को मस्तिष्क में स्थान न दें। ऐसी इच्छाएँ न करें, जिनकी पूर्ति के लिए दूसरों को हानि पहुँचाकर अनैतिक रीति से लाभ उठाने की योजना बनानी पड़े। तृष्णा में मन डूबा न रहे। उसमें द्वेष, शोषण, अपहरण एवं अन्याय के लिए कोई स्थान न हो। छल-कपट एवं धोखा देने की इच्छा कभी भी न हो, तो ऐसा निर्मल मन यज्ञ रूप ही कहा जायेगा।”

“आत्मा यज्ञमय हो”। उसमें आस्थाएँ, निष्ठाएँ, भावनाएँ, मान्यताएँ, आकांक्षाएँ जो भी हों, सब आदर्शवादिता, उत्कृष्टता एवं सात्विकता से भरी-पूरी हों। उद्वेग नहीं सन्तोष एवं उल्लास की अन्तःकरण में प्रधानता रहे। शुभ ही अनुभव करें, शुभ ही सोचें और शुभ की ही आशा रखें। आत्मा को शुभ बनाते-बनाते, परिष्कृत करते-करते उसे परमात्मा के रूप में परिणत करने की चेष्टा जारी रहे, तो यह प्रक्रिया आत्मज्ञान कहलायेगी।

“ब्रह्म” यज्ञ के लिए हो”। यहाँ ब्रह्म शब्द का प्रयोग ‘विवेक’ के अर्थ

में प्रयुक्त हुआ है। हमारा विवेक जाग्रत रहे, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के जो कषाय-कल्मष उठते रहते हैं और अन्तःकरण में जो विविध विक्षेप उत्पन्न करते रहते हैं, उनको विवेक द्वारा नियन्त्रित किया जाए। आत्मनिग्रह का कार्य विवेक द्वारा ही सम्पन्न होता है, इसलिए विवेक की सत्ता इतनी प्रबल रखी जाए कि मनोविकार सिर न उठा सकें और कुमार्ग पर जीवन को घसीट कर न ले जा सकें।

ज्योति यज्ञ के लिए हो। यहाँ 'ज्योति' शब्द क्रियाशीलता के अर्थ में प्रयुक्त है। हमारी शक्ति कुमार्गगामी न हो, हमारी बुद्धि सत्य का परित्याग न करे, हमारी आकांक्षा अनुचित की चाह न करे, हमारी प्रतिभा दूसरों पर अवांछनीय भार या दबाव न डाले। विद्या की दिशा में अधोगामी नहीं, ऊर्ध्वगामी बनें। पतन के लिए नहीं, उत्थान के लिए कदम बढ़ें, तो समझना चाहिए कि हमारी ज्योति यज्ञ के लिए प्रयुक्त हो रही है। जिस प्रकार दीपक अपने को जलाकर दूसरों के लिए प्रकाश उत्पन्न करता है, वैसे ही हम भी अपने ज्योतिर्मय व्यक्तित्व से संसार में पुण्य-प्रकाश का सृजन-अभिवर्धन करते रहें।

“स्वः” यज्ञ के लिए हो। अपना व्यक्तित्व या अस्तित्व सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाने के लिए, “सत्यं, शिवं, सुन्दरम्” की महत्ता विकसित करने के लिए हो। हमारा “अहं” अपना गर्व पूरा करने के लिए न हो; धर्म, सत्य और ईश्वर का गौरव बढ़ाने में नियोजित रहे।

‘पृष्ठ’ भाग यज्ञ के लिए हो। आगे वाला-दिखाई देने वाला हिस्सा, तो लोग आदमियों का सा बना लेते हैं, पर भीतर उसके गन्दगी ही गन्दगी भरी रहती है, इस प्रकार हम अपना वर्तमान तो किसी प्रकार गुजार लेते हैं, पर पीछे का वह पृष्ठ भाग जो मरणोत्तर जीवन से सम्बन्धित है, अन्धेरे में ही पड़ा रहता है। इस संसार से विदा होने के पश्चात् हम अपने पीछे कोई महत्वपूर्ण स्मृति नहीं छोड़ जाते- यह खेद की बात है। मन्त्र में कहा गया है कि हमारा पृष्ठ भाग, पीछे का अदृश्य पहलू भी यज्ञ के लिए प्रयुक्त हो।

अन्त में यह ‘यज्ञ’ भी यज्ञ के लिए हो। इसमें यज्ञीय संस्कृति का चरमोत्कर्ष बतलाया गया है, हम जो भी शुभ कार्य करें, सद्भाव रखें, उनके पीछे किसी प्रकार के लौकिक या पारलौकिक व्यक्तिगत लाभ

की इच्छा न हो। यद्यपि स्वभावतः परमार्थ पर चलने वाले को इस लोक और परलोक में सुख-शान्ति का अविरल लाभ मिलता है, फिर भी इस प्रकार के लाभ की बात सोचकर व्यक्तिगत स्वार्थ की बात न आने दी जाए। शुभ कर्म इसीलिए किये जाएँ कि इन्हीं से मनुष्यता की शोभा है। सत्य और औचित्य की विजय ही ईश्वर की विजय है। धर्म का अभिनन्दन एवं परिपोषण ही मानवोचित कर्तव्य है। इन उदात्त भावनाओं से एवं यज्ञीय परम्परा को गतिमान् रखने की भावना से यज्ञ कर्म किये जाएँ।

अन्त में शरीर के प्रत्येक अंश को यज्ञमय बनाने की प्रेरणा के साथ १६ आहुतियाँ पूर्ण की जाती हैं। सत्रहवीं आहुति शरीरगत पंचतत्त्वों को श्रेष्ठतम दिशा में गति देने की भावना से की जाती है। भावना करते हैं कि चक्षुःशक्ति सूर्य की ओर, वायु एवं आत्मतत्त्व ह्यूलोक की ओर, पृथ्वीतत्त्व धर्मतत्त्व की ओर तथा जलतत्त्व हितकारी ओषधियों की ओर उन्मुख हों।

क्रिया और भावना- एक-एक मन्त्र से सम्बन्धित संक्षिप्त प्रेरणा दी जाए। भावना करें कि मृतक के व्यक्तित्व के सभी अंश यज्ञभूत हो रहे हैं, हमारा व्यक्तित्व यज्ञीय धारा के योग्य बने।

१. ॐ आयुर्यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा।
२. ॐ प्राणो यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा।
३. ॐ अपानो यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा।
४. ॐ व्यानो यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा।
५. ॐ उदानो यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा।
६. ॐ समानो यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा।
७. ॐ चक्षुर्यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा।
८. ॐ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा।
९. ॐ वाग्यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा।
१०. ॐ मनो यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा।
११. ॐ आत्मा यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा।
१२. ॐ ब्रह्मा यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा।
१३. ॐ ज्योतिर्यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा।
१४. ॐ स्वर्यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा।

१५. ॐ पृष्ठं यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा ।

१६. ॐ यज्ञो यज्ञेन कल्पता १३ स्वाहा । - २२.३३

१७. ॐ सूर्यं चक्षुर्गच्छतु, वातमात्मा द्यां च गच्छ,
पृथिवीं च धर्मणा । अपो वा गच्छ यदि, तत्र ते हितमोषधीषु,
प्रतितिष्ठा शरीरैः स्वाहा । - १०.१६.३

॥ सामूहिक जप-प्रार्थना ॥

शरीर यज्ञ के बाद सभी परिजन चिता की ओर मुख करके शान्त भाव से पंक्तिबद्ध होकर बैठें । परस्पर चर्चा-वार्तालाप न करें । आवश्यकता पड़े, तो सम्बन्धित व्यक्ति को इशारे से बुलाकर संक्षिप्त चर्चा कर लें । वातावरण शान्त बनाये रखें । सभी लोग गायत्री मन्त्र का मानसिक जप करते हुए मृतात्मा की सद्गति तथा परिजनों के शोक निवारण की प्रार्थना करें । पूर्णाहुति-कपाल क्रिया का समय आने तक यह क्रम चालू रखा जाए । श्मशान घाट पर की गई प्रार्थना-साधना का अपना ही महत्व है । तन्त्र विद्या के समर्थक तो उसे अनिवार्य मानते हैं । कपाल क्रिया से पूर्व स्थान न छोड़ने की परिपाटी है । कपाल क्रिया तब की जाती है, जब खोपड़ी की हड्डियाँ आग पकड़ लें और तालु भाग में छेद करने की स्थिति बन जाए । उस समय का उपयोग जप करके किया जाना चाहिए । इस बीच अनुभवी व्यक्ति चिता की अग्नि सँभालते हैं । लकड़ियों को उचित स्थान पर जमाने का क्रम बनाये रखें ।

॥ पूर्णाहुति-कपाल क्रिया ॥

दिशा एवं प्रेरणा- मस्तिष्क जीवन का वास्तविक केन्द्र संस्थान है । उसमें जैसे विचार या भाव उठते हैं, उसी के अनुकूल जीवन की दिशा निर्धारित होती है और उत्थान-पतन का वैसा ही संयोग बन जाता है । मस्तिष्क को सीमाबद्ध-संकुचित नहीं रहना चाहिए, उसको व्यापक-विशाल आधार पर सुविकसित होना चाहिए- इस तथ्य का प्रतिपादन करने के लिए कपाल-क्रिया का कर्मकाण्ड करते हैं । खोपड़ी फोड़कर विचार संस्थान को यह अवसर देते हैं कि एक छोटी परिधि के भीतर ही वह सोचता न रहे, वरन् विश्व मानव की विभिन्न समस्याओं को ध्यान में रखते हुए अपना कर्तव्य

पथ निर्धारित करे । मस्तिष्क की हड्डी का घेरा टूटने से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि व्यापक दृष्टिकोण अपनाने की सुविधा हुई । मृत और जीवित सभी के लिए मानसिक संकीर्णता हानिकारक बताकर सोचने का दायरा बढ़ा करना इस पूर्णाहुति क्रिया का लक्ष्य है । जिसका मस्तिष्क अन्तिम समय तक विवेकशील बना रहा, समझना चाहिए उसने जीवन यज्ञ की ठीक तरह पूर्णाहुति कर ली-यह प्रतीक-संकेत इस कपाल क्रिया में मिलता है ।

क्रिया और भावना- अन्त्येष्टि करने वाले सज्जन बाँस हाथ में लें, चिता के शिरोभाग की ओर खड़े हों । सभी लोग खड़े हो जाएँ, पूर्णाहुति के लिए हवन सामग्री, नारियल-गोला तैयार रखें । सभी के हाथों में पूर्णाहुति के लिए हवन सामग्री तुलसी-चन्दन आदि की लकड़ी के टुकड़े दे दिये जाएँ । खोपड़ी की हड्डी का मध्य भाग तालु मुलायम होता है, वह जोड़ सबसे पहले जलकर खुल जाता है- वहाँ बाँस की नोकों का दबाव देकर छेद कर दें । अब पूर्णाहुति मन्त्र “ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं.....” बोलते हुए पूर्णाहुति का गोला बाँस के सहारे सिर के पास रख दिया जाए, सभी लोग सामग्री होमें ।

भावना करें कि मस्तिष्क स्थित जीवन संचालक विचार-तंत्रिका के जाल (सर्किट) को यज्ञीय पुट देकर विश्व चेतना में मिला दिया गया । अपने मस्तिष्क को भी इस संस्कार से युक्त बनाया जा रहा है ।

पूर्णाहुति-कपाल क्रिया के बाद चिता शांत होने तक देख-रेख के लिए २-४ व्यक्ति छोड़कर शेष वापस लौट सकते हैं अथवा स्थानीय परम्परानुसार एक साथ सम्पूर्ण कृत्य समाप्त होने पर सामूहिक स्नान, जलांजलि, शोक प्रार्थना आदि के कृत्य किये जा सकते हैं । वहाँ से चलने के पहले नीचे लिखे अनुसार समापन कर्म कर लिये जाने चाहिए ।

वसोर्धारा, स्नेह सिंचन- वसोर्धारा में घी की धारा छोड़ते हुए पूर्णाहुति का अन्तिम भाग पूर्ण किया जाता है । घृत का दूसरा नाम स्नेह है, स्नेह प्यार को कहते हैं । प्यार भरा जीवन ही सराहनीय है । रूखा, नीरस, निष्ठुर, कर्कश, स्वार्थी और संकीर्ण जीवन तो धिक्कारने योग्य ही समझा जाता है । वसोर्धारा में घृत की, स्नेह की अखण्ड धारा “ॐ वसोः पवित्रम्” मन्त्र से डाली जाती है, उसका तात्पर्य यही है कि व्यक्ति का जीवन स्नेह धारा में डूबा रहे ।

परिक्रमा और नमस्कार- उपस्थित सभी लोग चिता की परिक्रमा

“यानि कानि च पापानि” मन्त्र के साथ करते हुए स्वर्गीय आत्मा के प्रति अपना सम्मान एवं सद्भाव प्रकट करते हैं। “ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय” इत्यादि मंत्र से नमस्कार करते हैं। यह नमस्कार ईश्वर के लिए है, साथ ही स्वर्गीय आत्मा के लिए भी। ईश्वर के लिए इसलिए कि उसने दिवंगत आत्मा को मानव जीवन का स्वर्णिम सौभाग्य प्रदान किया और यह अवसर दिया कि अनन्त काल तक के लिए अविच्छिन्न सुख-शान्ति यदि वह चाहे तो प्राप्त कर ले। इस महान् अनुकम्पा के लिए ईश्वर को नमस्कार किया जाता है। मृतक व्यक्ति के द्वारा जीवित व्यक्तियों के साथ कोई उपकार हुए हों, उसके लिए यह सजीव विश्व कृतज्ञ है। इस कृतज्ञता की अभिव्यक्ति के लिए जन-जीवन का यह प्रतिनिधि-अभिवन्दन है।

सब लोग मिलकर शान्ति पाठ करें। दिवंगत आत्मा के शरीर त्याग से जो विकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं, मृतक के शरीर त्यागने पर जो अशान्ति हुई हो, उसकी शान्ति के लिए यह शान्ति पाठ किया जाता है।

इस प्रकार अन्त्येष्टि संस्कार पूरा करने पर, संस्कार में सम्मिलित लोग किसी जलाशय पर जाकर स्नान करें, वस्त्र धोएँ, लोकाचार के अनुसार नीम की पत्ती चबाने जैसे कृमिनाशक उपचार करें।

॥ अस्थि विसर्जन ॥

दिशा एवं प्रेरणा- अन्त्येष्टि के बाद अस्थि अवशेष एकत्रित करके, उन्हें किसी पुण्य तीर्थ में विसर्जित करने की परिपाटी है। जीवन का कण-कण सार्थक हो, इसलिए शरीर के अवशेष भी पुण्य क्षेत्र में डाल दिये जाते हैं।

अस्थियाँ चिता शान्त होने पर तीसरे दिन उठाई जाती हैं, जल्दी उठानी हों, तो दूध युक्त जल से अथवा केवल जल से सिंचित करके उठाते हैं। अस्थियाँ उठाते समय नीचे लिखा मंत्र बोला जाए।

ॐ आ त्वा मनसाऽनार्तेन, वाचा ब्रह्मणा त्रय्या विद्यया,
पृथिव्यामक्षिकायामपा रसेन निवषाम्यसौ । का० श्रौ० सू० २५/८६

इन अस्थियों को कलश या पीत-वस्त्र में नीचे कुश रखकर एकत्रित किया जाए, फिर इन्हें तीर्थ क्षेत्र (नदी, तालाब या अन्य पवित्र स्थल) में ले जाकर उसे विसर्जन स्थल के निकट रखें। हाथ में यव, अक्षत, पुष्प लेकर यम और पितृ आवाहन के मंत्र बोलें, पुष्प चढ़ाकर हाथ जोड़कर नमस्कार करें -

॥ यम ॥

ॐ यमग्ने कव्यवाहन, त्वं चिन्मन्यसे रयिम्। तन्नो गीर्भिः
श्रवाय्यं, देवत्रा पनया युजम्। ॐ यमाय नमः। आवाहयामि,
स्थापयामि, ध्यायामि ॥

- १९६४

॥ पितृ ॥

ॐ इदं पितृभ्यो नमोऽस्तु यै, पूर्वसो यऽ उपरास
ऽईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता, ये वा नूनं २३ सुवृजनासु
विक्षु। ॐ पितृभ्योनमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥

- १९६८

अब अंजलि में अस्थि कलश या पोटली लेकर प्रवाह में या किनारे खड़े होकर यव-अक्षत-पुष्प के साथ निम्न मंत्र पढ़ते हुए अस्थियों को विसर्जित प्रवाहित किया जाए।

ॐ अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो, असादयन् शरीरं ब्रह्म
प्राविशत्।

ॐ सूर्य चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा, द्यां च गच्छ पृथिवीं च
धर्मणा। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते, हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा
शरीरैः स्वाहा ॥

- अथर्व० ११.१०.२९ ; ऋ० १०.१६.३

तदुपरान्त हाथ जोड़कर निम्न मंत्र के साथ मृतात्मा का ध्यान करते हुए प्रार्थना करें-

ॐ ये चित्पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः।
ऋषीन्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ ॐ आयुर्विश्वायुः
परिपातु त्वा, पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्। यत्रासते सुकृतो यत्र
तऽईयुः, तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥

- अथर्व० १८.२.१५, ५५

तत्पश्चात् घाट पर ही तर्पण आदि विशेष क्रम सम्पन्न करें। तर्पण के बाद तीर्थ क्षेत्र में विद्यमान सत्शक्तियों को नमस्कार करके क्रम समाप्त करें-

ॐ ये तीर्थानि प्रचरन्ति, सूकाहस्ता निषंगिणः।

तेषां २३ सहस्रयोजने व धन्वानि तन्मसि ॥ - १६.६१

॥ मरणोत्तर संस्कार ॥

दिशा एवं प्रेरणा- भारतीय संस्कृति ने यह तथ्य घोषित किया है कि मृत्यु के साथ जीवन समाप्त नहीं होता, अनन्त जीवन शृंखला की एक कड़ी मृत्यु भी है, इसलिए संस्कारों के क्रम में जीव की उस स्थिति को भी बाँधा गया है। जब वह एक जन्म पूरा करके अगले जीवन की ओर उन्मुख होता है, कामना की जाती है कि सम्बन्धित जीवात्मा का अगला जीवन पिछले की अपेक्षा अधिक सुसंस्कारवान् बने। इस निमित्त जो कर्मकाण्ड किये जाते हैं, उनका लाभ जीवात्मा को क्रिया-कर्म करने वालों की श्रद्धा के माध्यम से ही मिलता है। इसलिए मरणोत्तर संस्कार को श्राद्धकर्म भी कहा जाता है।

यों श्राद्धकर्म का प्रारम्भ अस्थि विसर्जन के बाद ही प्रारम्भ हो जाता है। कुछ लोग नित्य प्रातः तर्पण एवं सायंकाल मृतक द्वारा शरीर त्याग के स्थान पर या पीपल के पेड़ के नीचे दीपक जलाने का क्रम चलाते रहते हैं।

मरणोत्तरसंस्कार अन्त्येष्टि संस्कार से तेरहवें दिन किया जाता है। जिस दिन अन्त्येष्टि (दाह क्रिया) होती है, वह दिन भी गिन लिया जाता है। कहीं-कहीं बारहवें दिन की भी परिपाटी होती है। बहुत से क्षेत्रों में दसवें दिन शुद्धि दिवस मनाया जाता है, उस दिन मृतक के निकट सम्बन्धी क्षौर कर्म कराते हैं, घर की व्यापक सफाई-पुताई शुद्धि तक पूर्ण कर लेते हैं, जहाँ तेरहवीं ही मानायी जाती है, वहाँ यह सब कर्म श्राद्ध संस्कार के पूर्व कर लिये जाते हैं।

अन्त्येष्टि के १३वें दिन मरणोत्तर संस्कार किया जाता है। यह शोक-मोह की पूर्णाहुति का विधिवत् आयोजन है। मृत्यु के कारण घर में शोक-वियोग का वातावरण रहता है, बाहर के लोग भी संवेदना-सहानुभूति प्रकट करने आते हैं- यह क्रम तेरह दिन में पूरा हो जाना चाहिए; ताकि भावुकतावश शोक का वातावरण लम्बी अवधि तक न खिंचता जाए। कर्तव्यों की ओर पुनः ध्यान देना आरम्भ कर दिया जाए।

मृतक के शरीर से अशुद्ध कीटाणु निकलते हैं। इसलिए मृत्यु के उपरान्त घर की सफाई करनी चाहिए। दीवारों की पुताई, जमीन की धुलाई-लिपाई, वस्त्रों की गरम जल से धुलाई, वस्तुओं की घिसाई, रँगई आदि

का ऐसा क्रम बनाना पड़ता है कि कोई छूत का अंश न रहे। यह कार्य दस से १३ दिन की अवधि में पूरा हो जाना चाहिए।

तेरहवें दिन मरणोत्तर संस्कार की वैसी ही व्यवस्था की जाए, जैसी अन्य संस्कारों की होती है। आँगन में यज्ञ वेदी बनाकर पूजन तथा हवन के सारे उपकरण इकट्ठे किये जाएँ। मण्डप बनाने या सजावट करने की आवश्यकता नहीं है। जिस व्यक्ति ने दाह संस्कार किया हो, वही इस संस्कार का भी मुख्य कार्यकर्ता, यजमान बनेगा और वही दिवंगत आत्मा की शान्ति-सद्गति के लिए निर्धारित कर्मकाण्ड कराएगा।

श्राद्ध संस्कार मरणोत्तर के अतिरिक्त पितृपक्ष में अथवा देहावसान दिवस पर किये जाने वाले श्राद्ध के रूप में भी कराया जाता है। जीवात्माओं की शान्ति के लिए तीर्थों में भी श्राद्ध कर्म कराने का विधान है।

पूर्व व्यवस्था- श्राद्ध संस्कार के लिए सामान्य यज्ञ देव पूजन की सामग्री के अतिरिक्त नीचे लिखे अनुसार व्यवस्था बना लेनी चाहिए।

* तर्पण के लिए पात्र-ऊँचे किनारे की थाली, परात, पीतल या स्टील की टैनियाँ (तसले, तगाड़ी के आकार के पात्र) जैसे उपयुक्त रहते हैं। एक पात्र जिसमें तर्पण किया जाए, दूसरा पात्र जिसमें जल अर्पित करते रहें। तर्पण पात्र में जल पूर्ति करते रहने के लिए कलश आदि पास ही रहे। इसके अतिरिक्त कुश, पवित्री, चावल, जौ, तिल थोड़ी-थोड़ी मात्रा में रखें।

* पिण्ड दान के लिए लगभग एक पाव गुँधा हुआ जौ का आटा। जौ का आटा न मिल सके, तो गेहूँ के आटे में जौ, तिल मिलाकर गुँध लिया जाए। पिण्ड स्थापन के लिए पत्तलें, केले के पत्ते आदि। पिण्डदान सिंचित करने के लिए दूध-दही, मधु थोड़ा-थोड़ा रहे।

* पंचबलि एवं नैवेद्य के लिए भोज्य पदार्थ। सामान्य भोज्य पदार्थ के साथ उर्द की दाल की टिकिया (बड़े) तथा दही इसके लिए विशेष रूप से रखने की परिपाटी है। पंचबलि अर्पित करने के लिए हरे पत्ते या पत्तल लें।

* पूजन वेदी पर चित्र, कलश एवं दीपक के साथ एक छोटी ढेरी चावल की 'यम' तथा तिल की 'पितृ' आवाहन के लिए बना देनी चाहिए।

क्रम व्यवस्था- श्राद्ध संस्कार में देवपूजन एवं तर्पण के साथ पंचयज्ञ करने का विधान है। यह पंचयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, एवं

मनुष्ययज्ञ है। इन्हें प्रतीक रूप में “बलिवैश्व देव” की प्रक्रिया में भी कराने की परिपाटी है। वैसे पितृयज्ञ के लिए पिण्डदान, भूतयज्ञ के लिए पंचबलि, मनुष्ययज्ञ के लिए श्राद्ध संकल्प आदि का विधान है। देवयज्ञ के लिए सत्प्रवृत्ति सम्बर्धन-देवदक्षिणा संकल्प तथा ब्रह्मयज्ञ के लिए गायत्री विनियोग किया जाता है। अन्त्येष्टि करने वाले को प्रधान यजमान के रूप में बिठाया जाता है। विशेष कृत्य उसी से कराये जाते हैं। अन्य सम्बन्धियों को भी स्वस्तिवाचन, यज्ञाहुति आदि में सम्मिलित किया जाना उपयोगी है।

प्रारम्भ में षट्कर्म के बाद संकल्प कराएँ। फिर रक्षाविधान तक के उपचार करा लिये जाते हैं। उसके बाद विशेष उपचार प्रारम्भ होते हैं।

प्रारम्भ में यम एवं पितृ आवाहन-पूजन करके तर्पण कराया जाता है। तर्पण के बाद क्रमशः ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ एवं मनुष्ययज्ञ कराएँ।

इन यज्ञों के बाद अग्नि स्थापना करके विधिवत् गायत्रीयज्ञ कराएँ। विशेष आहुतियों के बाद स्वष्टकृत, पूर्णाहुति आदि सम्पन्न कराते हुए समय की सीमा को देखते हुए यज्ञ का समापन संक्षेप या विस्तारपूर्वक कराएँ।

विसर्जन के पूर्व दो थालियों में भोजन सजाकर रखें। इनमें देवों और पितरों के लिए नैवेद्य अर्पित किया जाए। पितृ नैवेद्य की थाली में किसी मान्य वयोवृद्ध अथवा पुरोहित को भोजन करा दें और देव नैवेद्य किसी कन्या को जिमाया जाए। विसर्जन करने के पश्चात् पंचबलि के भाग यथास्थान पहुँचाने की व्यवस्था करें। पिण्ड नदी में विसर्जित करने या गौओं को खिलाने की परिपाटी है। इसके बाद निर्धारित क्रम से परिजनों, कन्या, ब्राह्मण आदि को भोजन कराएँ। रात्रि में संस्कार स्थल पर दीपक रखें।

...नामाहं.. नामकमृतात्मनः प्रेतत्वनिवृत्तिद्वारा अक्षय्य-लोकावाप्तये स्वकर्तव्यपालनपूर्वकं पितृणाद् आनुण्यार्थं सर्वेषां पितृणां शान्तिस्तुष्टिनिमित्तं पंचयज्ञसहितं श्राद्धकर्म अहं करिष्ये।

॥ यम देवता-पूजन ॥

यम को मृत्यु का देवता कहा जाता है। यम नियन्त्रण करने वाले को तथा समय को भी कहते हैं। सृष्टि का सन्तुलन-नियन्त्रण बनाये रखने के लिए मृत्यु भी एक आवश्यक प्रक्रिया है। नियन्त्रण-सन्तुलन को बनाये रखने वाली काल की सीमा का स्मरण रखने से जीवन संतुलित, व्यवस्थित तथा

प्रखर एवं प्रगतिशील बनाये रखने की प्रेरणा मिलती है।

क्रिया और भावना- पूजन की वेदी पर चावलों की एक ढेरी यम के प्रतीक रूप में रखें तथा मन्त्र के साथ उसका पूजन करें। यदि समय की कमी न हो, तो कई लोग मिलकर यम-स्तोत्र का पाठ भी करें। स्तुति करने का अर्थ है- उनके गुणों का स्मरण तथा अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति करना।

हाथ में यव-अक्षत-पुष्प लेकर जीवन-मृत्यु चक्र का अनुशासन बनाये रखने वाले तन्त्र के अधिष्ठाता का आवाहन करें-पूजन करें। भावना करें कि “यम” का अनुशासन हम सबके लिए कल्याणकारी बने।

ॐ यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे। देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु, पृथिव्याः स १३ स्पृशस्याहि। अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि ॥

- ३७.११

ॐ यमाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि। ततो नमस्कारं करोमि।

॥ यम स्तोत्र ॥

ॐ नियमस्थः स्वयं यश्च, कुरुतेऽन्यान्नियन्त्रितान्।
प्रहरिणे मर्यादानां, शमनाय तस्मै नमः ॥१॥
यस्य स्मृत्या विजानाति, भंगुरत्वं निजं नरः।
प्रमादालस्यरहितो, बोधकाय नमोऽस्तु ते ॥२॥
विधाय धूलिशयनं, येनाहं मानिनां खलु।
महतां चूर्णितो गर्वः, तस्मै नमोऽन्तकाय च ॥३॥
यस्य प्रचण्डदण्डस्य, विधानेन हि त्रासिताः।
हाहाकारं प्रकुर्वन्ति, दुष्टाः तस्मै नमो नमः ॥४॥
कृपादृष्टिरनन्ता च, यस्य सत्कर्मकारिषु।
पुरुषेषु नमस्तस्मै, यमाय पितृस्वामिने ॥५॥
कर्मणां फलदानं हि, कार्यमेव यथोचितम्।
पक्षपातो न कस्यापि, नमो यस्य यमाय च ॥६॥
यस्य दण्डभयाद्बुद्धः, दुष्प्रवृत्तिकुर्मकृतु।
कृतान्ताय नमस्तस्मै, प्रदत्ते चेतनां सदा ॥७॥

प्राधान्यं येन न्यायस्य, महत्त्वं कर्मणां सदा ।
मर्यादारक्षणं कर्त्रे, नमस्तस्मै यमाय च ॥८॥
न्यायार्थं यस्य सर्वे तु, गच्छन्ति मरणोत्तरम् ।
शुभाशुभं फलं प्राप्नु, नमस्तस्मै यमाय च ॥९॥
सिंहासनाधिरूढोऽत्र, बलवानपि पापकृत् ।
यस्याग्रे कम्पते त्रासात्, तस्मै नमोऽन्तकाय च ॥१०॥

॥ पितृ - आवाहन-पूजन ॥

इसके पश्चात् इस संस्कार के विशेष कृत्य आरम्भ किये जाएँ । कलश की प्रधान वेदी पर तिल की एक छोटी ढेरी लगाएँ, उसके ऊपर दीपक रखें । इस दीपक के आस-पास पुष्पों का घेरा, गुलदस्ता आदि से सजाएँ । छोटे-छोटे आटे के बने ऊपर की ओर बत्ती वाले घृतदीप भी किनारों पर सीमा रेखा की तरह लगा दें । उपस्थित लोग हाथ में अक्षत लेकर मृतात्मा के आवाहन की भावना करें और प्रधान दीपक की लौ में उसे प्रकाशित हुआ देखें । इस आवाहन का मन्त्र "ॐ विश्वे देवास.." है । सामूहिक मन्त्रोच्चार के बाद हाथों में रखे चावल स्थापना की चौकी पर छोड़ दिये जाएँ । आवाहित पितृ का स्वागत-सम्मान षोडशोपचार या पंचोपचार पूजन द्वारा किया जाए ।

ॐ विश्वेदेवास ऽ आगत, शृणुता म ऽ इमं २४ हवम् । एदं बर्हिर्निषीदत ॥ ॐ विश्वेदेवाः शृणुतेम २४ हवं मे, ये अन्तरिक्षे यऽउप द्यविष्ठ । ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा, आसद्यास्मि-
न्बर्हिषि मादयध्वम् ।

- ७.३४, ३३.५३

ॐ पितृभ्यो नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ।

॥ तर्पण ॥

दिशा एवं प्रेरणा- आवाहन, पूजन, नमस्कार के उपरान्त तर्पण किया जाता है । जल में दूध, जौ, चावल, चन्दन डाल कर तर्पण कार्य में प्रयुक्त करते हैं । मिल सके, तो गंगा जल भी डाल लेना चाहिए ।

तृप्ति के लिए तर्पण किया जाता है । स्वर्गस्थ आत्माओं की तृप्ति किसी पदार्थ से, खाने-पहने आदि की वस्तु से नहीं होती, क्योंकि स्थूल शरीर के लिए ही भौतिक उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है । मरने के बाद स्थूल

शरीर समाप्त होकर, केवल सूक्ष्मशरीर ही रह जाता है । सूक्ष्मशरीर को भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि की आवश्यकता नहीं रहती, उसकी तृप्ति का विषय कोई खाद्य पदार्थ या हाड़-मांस वाले शरीर के लिए उपयुक्त उपकरण नहीं हो सकते । सूक्ष्मशरीर में विचारणा, चेतना और भावना की प्रधानता रहती है, इसलिए उसमें उत्कृष्ट भावनाओं से बना अन्तःकरण या वातावरण ही शान्तिदायक होता है ।

इस दृश्य संसार में स्थूलशरीर वाले को जिस प्रकार इन्द्रिय भोग, वासना, तृष्णा एवं अहंकार की पूर्ति में सुख मिलता है, उसी प्रकार पितरों का सूक्ष्म शरीर शुभ कर्मों से उत्पन्न सुगन्ध का रसास्वादन करते हुए तृप्ति का अनुभव करता है । उसकी प्रसन्नता तथा आकांक्षा का केन्द्र बिन्दु श्रद्धा है । श्रद्धा भरे वातावरण के सान्निध्य में पितर अपनी अशान्ति खोकर आनन्द का अनुभव करते हैं, श्रद्धा ही इनकी भूख है, इसी से उन्हें तृप्ति होती है । इसलिए पितरों की प्रसन्नता के लिए श्रद्धा एवं तर्पण किये जाते हैं । इन क्रियाओं का विधि-विधान इतना सरल एवं इतने कम खर्च का है कि निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी उसे आसानी से सम्पन्न कर सकता है ।

तर्पण में प्रधानतया जल का ही प्रयोग होता है । उसे थोड़ा सुगन्धित एवं परिपुष्ट बनाने के लिए जौ, तिल, चावल, दूध, फूल जैसी दो-चार मांगलिक वस्तुएँ डाली जाती हैं । कुशाओं के सहारे जौ की छोटी-सी अंजलि मंत्रोच्चारपूर्वक डालने मात्र से पितर तृप्त हो जाते हैं; किन्तु इस क्रिया के साथ आवश्यक श्रद्धा, कृतज्ञता, सद्भावना, प्रेम, शुभकामना का समन्वय अवश्य होना चाहिए । यदि श्रद्धाञ्जलि इन भावनाओं के साथ की गई है, तो तर्पण का उद्देश्य पूरा हो जायेगा, पितरों को आवश्यक तृप्ति मिलेगी; किन्तु यदि इस प्रकार की कोई श्रद्धा भावना तर्पण करने वाले के मन में नहीं होती और केवल लकीर पीटने के लिए मात्र पानी इधर-उधर फैलाया जाता है, तो इतने भर से कोई विशेष प्रयोजन पूर्ण न होगा, इसलिए इन पितृ-कर्मों के करने वाले यह ध्यान रखें कि इन छोटे-छोटे क्रिया-कृत्यों को करने के साथ-साथ दिवंगत आत्माओं के उपकारों का स्मरण करें, उनके सद्गुणों तथा सत्कर्मों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करें । कृतज्ञता तथा सम्मान की भावना उनके प्रति रखें और यह अनुभव करें कि यह जलाञ्जलि जैसे अकिंचन उपकरणों

के साथ, अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति करते हुए स्वर्गीय आत्माओं के चरणों पर अपनी सद्भावना के पुष्प चढ़ा रहा हूँ। इस प्रकार की भावनाएँ जितनी ही प्रबल होंगी, पितरों को उतनी ही अधिक तृप्ति मिलेगी।

जिस पितर का स्वर्गवास हुआ है, उसके किये हुए उपकारों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना, उसके अधूरे छोड़े हुए पारिवारिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करने में तत्पर होना तथा अपने व्यक्तित्व एवं वातावरण को मंगलमय ढाँचे में ढालना मरणोत्तर संस्कार का प्रधान प्रयोजन है। गृह शुद्धि, सूतक निवृत्ति का उद्देश्य भी इसी के साथ जुड़ा हुआ है। देवावाहन, यज्ञ आदि की क्रियाएँ इसी निमित्त की जाती हैं; किन्तु तर्पण में केवल इन्हीं एक पितर के लिए नहीं, पूर्वकाल में गुजरे हुए अपने परिवार, माता के परिवार, दादी के परिवार के तीन-तीन पीढ़ी के पितरों की तृप्ति का भी आयोजन किया जाता है। इतना ही नहीं इस पृथ्वी पर अवतरित हुए सभी महान् पुरुषों की आत्मा के प्रति इस अवसर पर श्रद्धा व्यक्त करते हुए उन्हें अपनी सद्भावना के द्वारा तृप्त करने का प्रयत्न किया जाता है।

तर्पण को छः भागों में विभक्त किया गया है- (१) देव-तर्पण (२) ऋषि-तर्पण (३) दिव्य-मानव-तर्पण (४) दिव्य-पितृ-तर्पण (५) यम-तर्पण (६) मनुष्य-पितृ-तर्पण। सभी तर्पण नीचे लिखे क्रम से किये जाते हैं।

॥ देव तर्पणम् ॥

देव शक्तियाँ ईश्वर की वे महान् विभूतियाँ हैं, जो मानव-कल्याण में सदा निःस्वार्थ भाव से प्रयत्नरत हैं। जल, वायु, सूर्य, अग्नि, चन्द्र, विद्युत् तथा अवतारी ईश्वर अंशों की मुक्त आत्माएँ एवं विद्या, बुद्धि, शक्ति, प्रतिभा, करुणा, दया, प्रसन्नता, पवित्रता, जैसी सत्प्रवृत्तियाँ सभी देव शक्तियों में आती हैं। यद्यपि ये दिखाई नहीं देती, तो भी इनके अनन्त उपकार हैं। यदि इनका लाभ न मिले, तो मनुष्य के लिए जीवित रह सकना भी सम्भव न हो। इनके प्रति कृतज्ञता की भावना व्यक्त करने के लिए यह देव-तर्पण किया जाता है।

यजमान दोनों हाथों की अनामिका अँगुलियों में पवित्री धारण करें। हाथ में जल-अक्षत लेकर नीचे लिखे मन्त्र से देव आवाहन करें।

ॐ आगच्छन्तु महाभागा, विश्वेदेवा महाबलाः।

ये तर्पणेऽत्र विहिताः, सावधाना भवन्तु ते ॥

जल में चावल डालें। कुश-मोटक सीधे ही लें। यज्ञोपवीत सव्य (बायें कन्धे पर) सामान्य स्थिति में रखें। तर्पण के समय अंजलि में जल भरकर सभी अँगुलियों के अग्र भाग के सहारे अर्पित करें। इसे देवतीर्थ मुद्रा कहते हैं। प्रत्येक देवशक्ति के लिए एक-एक अंजलि जल डालें। पूर्वाभिमुख होकर देते चलें।

ॐ ब्रह्मादयो देवाः आगच्छन्तु गृहणन्तु एतान् जलाञ्जलीन्। ॐ ब्रह्मा तृप्यताम्।
 ॐ विष्णुस्तृप्यताम्। ॐ रुद्रस्तृप्यताम्।
 ॐ प्रजापतिस्तृप्यताम्। ॐ देवास्तृप्यन्ताम्।
 ॐ छन्दांसि तृप्यन्ताम्। ॐ वेदास्तृप्यन्ताम्।
 ॐ ऋषयस्तृप्यन्ताम्। ॐ पुराणाचार्यास्तृप्यन्ताम्।
 ॐ गन्धर्वास्तृप्यन्ताम्। ॐ इतराचार्यास्तृप्यन्ताम्।
 ॐ संवत्सरः सावयवस्तृप्यताम्। ॐ देव्यस्तृप्यन्ताम्।
 ॐ अप्सरसस्तृप्यन्ताम्। ॐ देवानुगास्तृप्यन्ताम्।
 ॐ नागास्तृप्यन्ताम्। ॐ सागरास्तृप्यन्ताम्।
 ॐ पर्वतास्तृप्यन्ताम्। ॐ सरितस्तृप्यन्ताम्।
 ॐ मनुष्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ यक्षास्तृप्यन्ताम्।
 ॐ रक्षांसि तृप्यन्ताम्। ॐ पिशाचास्तृप्यन्ताम्।
 ॐ सुपर्णास्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतानि तृप्यन्ताम्।
 ॐ पशवस्तृप्यन्ताम्। ॐ वनस्पतयस्तृप्यन्ताम्।
 ॐ ओषधयस्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतग्रामः चतुर्विधस्तृप्यताम्।

॥ ऋषि तर्पण ॥

दूसरा तर्पण ऋषियों के लिए है। व्यास, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, कात्यायन, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र, नारद, चरक, सुश्रुत, पाणिनि, दधीचि आदि ऋषियों के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति ऋषि तर्पण द्वारा की जाती है। ऋषियों को भी देवताओं की तरह देवतीर्थ से एक-एक अंजलि जल दिया जाता है।

ॐ मरीच्यादि दशऋषयः आगच्छन्तु गृहणन्तु
 एतान्जलाञ्जलीन् । ॐ मरीचिस्तृप्यताम् । ॐ अत्रिस्तृप्यताम् ।
 ॐ अंगिराः तृप्यताम् । ॐ पुलस्त्यस्तृप्यताम् ।
 ॐ पुलहस्तृप्यताम् । ॐ क्रतुस्तृप्यताम् ।
 ॐ वसिष्ठस्तृप्यताम् । ॐ प्रचेतास्तृप्यताम् ।
 ॐ भृगुस्तृप्यताम् । ॐ नारदस्तृप्यताम् ।

॥ दिव्य-मनुष्य तर्पण ॥

तीसरा तर्पण दिव्य-मानवों के लिए है । जो पूर्णरूप से समस्त जीवन को लोक कल्याण के लिए अर्पित नहीं कर सके; पर अपना, अपने परिजनों का भरण-पोषण करते हुए लोकमंगल के लिए अधिकाधिक त्याग-बलिदान करते रहे, वे दिव्य मानव हैं । राजा हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, शिवि, जनक, पाण्डव, शिवाजी, प्रताप, भामाशाह, तिलक जैसे महापुरुष इसी श्रेणी में आते हैं ।

दिव्य मनुष्य तर्पण उत्तराभिमुख किया जाता है । जल में जौ डालें । जनेऊ कण्ठ में माला की तरह रखें । कुश हाथों में आड़े कर लें । कुशों के मध्य भाग से जल दिया जाता है । अंजलि में जल भरकर कनिष्ठा (छोटी उँगली) की जड़ के पास से जल छोड़ें, इसे प्राजापत्य तीर्थ मुद्रा कहते हैं । प्रत्येक सम्बोधन के साथ दो-दो अंजलि जल दें -

ॐ सनकादयः सप्तर्षयः आगच्छन्तु गृहणन्तु एतान्
 जलाञ्जलीन् । ॐ सनकस्तृप्यताम् ॥२॥
 ॐ सनन्दनस्तृप्यताम् ॥२॥ ॐ सनातनस्तृप्यताम् ॥२॥
 ॐ कपिलस्तृप्यताम् ॥२॥ ॐ आसुरिस्तृप्यताम् ॥२॥
 ॐ वोढुस्तृप्यताम् ॥२॥ ॐ पञ्चशिखस्तृप्यताम् ॥२॥

॥ दिव्य-पितृ-तर्पण ॥

चौथा तर्पण दिव्य-पितरों के लिए है । जो कोई लोकसेवा एवं तपश्चर्या तो नहीं कर सके, पर अपना चरित्र हर दृष्टि से आदर्श बनाये रहे, उस पर किसी तरह की आँच न आने दी । अनुकरण, परम्परा एवं प्रतिष्ठा की सम्पत्ति पीछे वालों के लिए छोड़ गये । ऐसे लोग भी मानव मात्र के लिए वन्दनीय हैं, उनका तर्पण भी ऋषि एवं दिव्य मानवों की तरह ही श्रद्धापूर्वक करना चाहिए ।

इसके लिए दक्षिणाभिमुख हों । वामजानु (बायाँ घुटना मोड़कर बैठें) जनेऊ अपसव्य (दाहिने कन्धे पर सामान्य से उल्टी स्थिति में) रखें । कुशा दुहरे कर लें । जल में तिल डालें । अञ्जलि में जल लेकर दाहिने हाथ के अँगूठे के सहारे जल गिराएँ । इसे पितृतीर्थ मुद्रा कहते हैं । प्रत्येक पितृ को तीन-तीन अञ्जलि जल दें ।

ॐ कव्यवाडादयो दिव्यपितरः आगच्छन्तु गृहणन्तु एतान्
 जलाञ्जलीन् । ॐ कव्यवाडनलस्तृप्यताम् , इदं सतिलं जलं
 (गंगाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ ॐ सोमस्तृप्यताम् इदं
 सतिलं जलं (गंगाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ ॐ
 यमस्तृप्यताम् , इदं सतिलं जलं (गंगाजलं वा) तस्मै स्वधा
 नमः ॥३॥ ॐ अर्यमा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गंगाजलं वा)
 तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ ॐ अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम् इदं
 सतिलं जलं (गंगाजलं वा) तेभ्यः स्वधा नमः ॥३॥ ॐ सोमपाः
 पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गंगाजलं वा) तेभ्यः स्वधा
 नमः ॥३॥ ॐ बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं
 (गंगाजलं वा) तेभ्यः स्वधा नमः ॥३॥

॥ यम तर्पण ॥

यम नियन्त्रण-कर्ता शक्तियों को कहते हैं । जन्म-मरण की व्यवस्था करने वाली शक्ति को यम कहते हैं । मृत्यु को स्मरण रखें, मरने के समय पश्चात्ताप न करना पड़े, इसका ध्यान रखें और उसी प्रकार की अपनी गतिविधियाँ निर्धारित करें, तो समझना चाहिए कि यम को प्रसन्न करने वाला तर्पण किया जा रहा है । राज्य शासन को भी यम कहते हैं । अपने शासन को परिपुष्ट एवं स्वस्थ बनाने के लिये प्रत्येक नागरिक को, जो कर्तव्य पालन करना है, उसका स्मरण भी यम तर्पण द्वारा किया जाता है । अपने इन्द्रिय निग्रहकर्ता एवं कुमार्ग पर चलने से रोकने वाले विवेक को यम कहते हैं । इसे भी निरन्तर पुष्ट करते चलना हर भावनाशील व्यक्ति का कर्तव्य है । इन कर्तव्यों की स्मृति यम-तर्पण द्वारा की जाती है । दिव्य पितृ तर्पण की तरह पितृतीर्थ से तीन-तीन अंजलि जल यमों को भी दिया जाता है ।

ॐ यमादिचतुर्दशदेवाः आगच्छन्तु गृहणन्तु एतान्
जलाञ्जलीन् । ॐ यमाय नमः ॥३॥ ॐ धर्मराजाय नमः ॥३॥
ॐ मृत्यवे नमः ॥३॥ ॐ अन्तकाय नमः ॥३॥ ॐ वैवस्वताय
नमः ॥३॥ ॐ कालाय नमः ॥३॥ ॐ सर्वभूतक्षयाय
नमः ॥३॥ ॐ औदुम्बराय नमः ॥३॥ ॐ दध्नाय नमः ॥३॥
ॐ नीलाय नमः ॥३॥ ॐ परमेष्ठिने नमः ॥३॥ ॐ वृकोदराय
नमः ॥३॥ ॐ चित्राय नमः ॥३॥ ॐ चित्रगुप्ताय नमः ॥३॥

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रों से यम देवता को नमस्कार करें-

ॐ यमाय धर्मराजाय, मृत्यवे चान्तकाय च ।
वैवस्वताय कालाय, सर्वभूतक्षयाय च ॥
औदुम्बराय दध्नाय, नीलाय परमेष्ठिने ।
वृकोदराय चित्राय, चित्रगुप्ताय वै नमः ॥

॥ मनुष्य-पितृ-तर्पण ॥

इसके बाद अपने परिवार से सम्बन्धित दिवंगत नर-नारियों का क्रम आता है । १- पिता, बाबा, परबाबा, माता, दादी, परदादी । २- नाना, परनाना, बूढ़े परनाना, नानी, परनानी, बूढ़ी परनानी । ३- पत्नी, पुत्र, पुत्री, चाचा, ताऊ, मामा, भाई, बुआ, मौसी, बहिन, सास, ससुर, गुरु, गुरुपत्नी, शिष्य, मित्र आदि । यह तीन वंशावलियाँ तर्पण के लिए हैं । पहले स्वगोत्र तर्पण किया जाता है

..... गोत्रोत्पन्नाः अस्मत् पितरः आगच्छन्तु गृहणन्तु एतान्
जलाञ्जलीन् । अस्मत्पिता (पिता) अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो
वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३॥
अस्मत्पितामहः (दादा) अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो
रुद्ररूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३॥
अस्मत्प्रपितामहः (परदादा) अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो
आदित्यरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३॥
अस्मन्माता (माता) अमुकी देवी दा अमुक सगोत्रा गायत्रीरूपा
तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३॥ अस्मत्पितामही
(दादी) अमुकी देवी दा अमुक सगोत्रा सावित्रीरूपा तृप्यताम् इदं

सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३॥ अस्मत्प्रपितामही (परदादी)
अमुकी देवी दा अमुक सगोत्रा लक्ष्मीरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं
जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३॥ अस्मत्सापत्न्यमाता (सौतेली माँ)
अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं
जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३॥

॥ द्वितीय गोत्र तर्पण ॥

इसके बाद द्वितीय गोत्र मातामह आदि का तर्पण करें । यहाँ यह भी पहले की भाँति निम्नलिखित वाक्यों को तीन-तीन बार पढ़कर तिल सहित जल की तीन-तीन अञ्जलियाँ पितृतीर्थ से दें यथा-

अस्मन्मातामहः (नाना) अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो
वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३॥
अस्मत्प्रमातामहः (परनाना) अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो रुद्ररूप-
स्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३॥
अस्मद्वृद्धप्रमातामहः (बूढ़े परनाना) अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो
आदित्यरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३॥
अस्मन्मातामही (नानी) अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा लक्ष्मीरूपा
तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३॥
अस्मत्प्रमातामही (परनानी) अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा रुद्ररूपा
तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३॥
अस्मद्वृद्धप्रमातामही (बूढ़ी परनानी) अमुकी देवी दा अमुक सगोत्रा
आदित्यरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३॥

॥ इतर तर्पण ॥

जिनको आवश्यक है, केवल उन्हीं के लिए तर्पण कराया जाए—

अस्मत्पत्नी अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा वसुरूपा तृप्यताम्
इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३॥ अस्मत्सुतः (बेटा) अमुक-
शर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा
नमः ॥३॥ अस्मत्कन्या (बेटी) अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा
वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३॥

अस्मत्पितृव्यः (चाचा) अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां
इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ अस्मन्मातुलः (मामा)
अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै
स्वधा नमः ॥३॥ अस्मद्भ्राता (अपना भाई) अमुकशर्मा
अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः
॥३॥ अस्मत्सापलभ्राता (सौतेला भाई) अमुकशर्मा
अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः
॥३॥ अस्मत्पितृभगिनी (बुआ) अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा
वसुरूपा तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३॥
अस्मन्मातृभगिनी (मौसी) अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा वसुरूपा
तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३॥ अस्मदात्मभगिनी
(अपनी बहिन) अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा वसुरूपा तृप्यतां इदं
सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३॥ अस्मत्सापलभगिनी (सौतेली
बहिन) अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा वसुरूपा तृप्यतां इदं सतिलं
जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३॥ अस्मत् श्वशुरः (श्वसुर) अमुकशर्मा
अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः
॥३॥ अस्मत् श्वसुरपत्नी (सास) अमुकी देवी दा अमुकसगोत्रा
वसुरूपा तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३॥ अस्मद्-
गुरुः अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं
तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ अस्मद् आचार्यपत्नी अमुकी देवी दा
अमुकसगोत्रा वसुरूपा तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा
नमः ॥३॥ अस्मत् शिष्यः अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूप-
स्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ अस्मत्सखा
अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै
स्वधा नमः ॥३॥ अस्मद् आप्तपुरुषः (सम्माननीय पुरुष)
अमुकशर्मा अमुकसगोत्रो वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै
स्वधा नमः ॥३॥ अस्मत् पतिः अमुकशर्मा अमुक सगोत्रो
वसुरूपस्तृप्यतां इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३॥

निम्न मन्त्र से पूर्व विधि से प्राणिमात्र की तुष्टि के लिए जल धार छोड़ें—
ॐ देवासुरास्तथा यक्षा, नागा गन्धर्वराक्षसाः ।
पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः, कूष्माण्डास्तरवः खगाः ॥
जलेचरा भूनिलया, वाय्वाधाराश्च जन्तवः ।
प्रीतिमेते प्रयान्त्वाशु, मददत्तेनाम्बुनाखिलाः ॥
नरकेषु समस्तेषु, यातनासु च ये स्थिताः ।
तेषामाप्यायनार्येतद्, दीयते सलिलं मया ॥
ये बान्धवाऽबान्धवा वा, येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु, ये चास्मत्तोयकांक्षिणः ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं, देवर्षिपितृमानवाः ।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे, मातृमातामहादयः ॥
अतीतकुलकोटीनां, सप्तद्वीपनिवासिनाम् ।
आब्रह्मभुवनाल्लोकाद्, इदमस्तु तिलोदकम् ॥
येऽबान्धवा बान्धवा वा, येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु, मया दत्तेन वारिणा ॥

॥ वस्त्र-निष्पीडन ॥

शुद्ध वस्त्र जल में डुबोएँ और बाहर लाकर मन्त्र को पढ़ते हुए अपसव्य
भाव से अपने बायें भाग में भूमि पर उस वस्त्र को निचोड़ें (यदि घर में किसी
मृत पुरुष का वार्षिक श्राद्ध कर्म हो, तो वस्त्र-निष्पीडन नहीं करना चाहिए ।)

ॐ ये के चास्मत्कुले जाता, अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ।

ते गृहणन्तु मया दत्तं, वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥

॥ भीष्म तर्पण ॥

अन्त में भीष्म तर्पण किया जाता है । ऐसे परमार्थ परायण महामानव,
जिन्होंने उच्च उद्देश्यों के लिए अपना वंश चलाने का मोह नहीं किया, भीष्म
उनके प्रतिनिधि माने गये हैं, ऐसी सभी श्रेष्ठात्माओं को जलदान दें—

ॐ वैयाघ्रपदगोत्राय, सांकृतिप्रवराय च ।

गंगापुत्राय भीष्माय, प्रदास्येऽहं तिलोदकम् ॥

अपुत्राय ददाम्येतत्, सलिलं भीष्मवर्मणे ॥

॥ देवार्घ्यदान ॥

भीष्म तर्पण के बाद सव्य होकर पूर्व दिशा को मुख करें। नीचे लिखे मन्त्रों से देवार्घ्यदान करें। अञ्जलि में जल भरकर प्रत्येक मन्त्र के साथ जलधार अँगुलियों के अग्रभाग से चढ़ाएँ और नमस्कार करें। भावना करें कि अपनी भावश्रद्धा को इन असीम शक्तियों में होमते हुए आन्तरिक विकास की भूमिका बना रहे हैं। प्रथम अर्घ्य सृष्टि निर्माता ब्रह्मा को-

ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् विसीमतः सुरुचो वेनऽ आकः ।

स बुध्न्याऽ उपमाऽ अस्य विष्ठाः, सतश्च योनिमसतश्च

विवः ॥ ॐ ब्रह्मणे नमः ॥

- १३.३

दूसरा अर्घ्य पोषणकर्ता भगवान् विष्णु को-

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांशं

सुरे स्वाहा ॥ ॐ विष्णवे नमः ॥

- ५.१५

तीसरा अर्घ्य अनुशासन-परिवर्तन के नियन्ता शिव-रुद्र महादेव को-

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवऽ, उतो तऽ इषवे नमः ।

बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ ॐ रुद्राय नमः ॥

- १६.१

चौथा अर्घ्य भूमण्डल के चेतना- केन्द्र सवितादेव सूर्य को-

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः

प्रचोदयात् ॥ ॐ सवित्रे नमः ॥

- ३.३५

पाँचवाँ अर्घ्य प्रकृति का संतुलन बनाये रखने वाले देव-मित्र के लिए-

ॐ मित्रस्य चर्षणीधृतो, ऽवो देवस्य सानसि ।

द्युम् चित्रश्रवस्तमम् ॥ ॐ मित्राय नमः ॥

- ११.६२

छठवाँ अर्घ्य तर्पण के माध्यम वरुणदेव के लिए-

ॐ इमं मे वरुण श्रुधी, हवमद्या च मृडय ।

त्वामवस्युराचके । ॐ वरुणाय नमः ॥

- २१.१

॥ नमस्कार ॥

अब खड़े होकर पूर्व की ओर से दिग्देवताओं को क्रमशः निर्दिष्ट दिशाओं में नमस्कार करें—

‘ॐ इन्द्राय नमः’ प्राच्यै ॥ ‘ॐ अग्नये नमः’ आग्नेय्यै ।

‘ॐ यमाय नमः’ दक्षिणायै ॥ ‘ॐ निर्वृतये नमः’ नैऋत्यै ॥

‘ॐ वरुणाय नमः’ पश्चिमायै ॥ ‘ॐ वायवे नमः’ वायव्यै ॥

‘ॐ सोमाय नमः’ उदीच्यै ॥ ‘ॐ ईशानाय नमः’ ऐशान्यै ॥

‘ॐ ब्रह्मणे नमः’ ऊर्ध्वायै ॥ ‘ॐ अनन्ताय नमः’ अधरायै ॥

इसके बाद जल में नमस्कार करें ।

ॐ ब्रह्मणे नमः । ॐ अग्नये नमः । ॐ पृथिव्यै नमः ।

ॐ ओषधिभ्यो नमः । ॐ वाचे नमः । ॐ वाचस्पतये नमः ।

ॐ महद्भ्यो नमः । ॐ विष्णवे नमः । ॐ अद्भ्यो नमः ।

ॐ अपाम्पतये नमः । ॐ वरुणाय नमः ।

॥ सूर्योपस्थान ॥

मस्तक और हाथ गीले करें। सूर्य की ओर मुख करके हथेलियाँ कंधों से ऊपर करके सूर्य की ओर करें। सूर्यनारायण का ध्यान करते हुए मन्त्र पाठ करें। अन्त में नमस्कार करें और मस्तक-मुख आदि पर हाथ फेरें ।

ॐ अदृश्रमस्य केतवो, विरश्मयो जनाँऽनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा । उपयामगृहीतोऽसि, सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते, योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय । सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं, देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥

- ८.४०

॥ मुखमार्जन - स्वतर्पण ॥

मन्त्र के साथ यजमान अपना मुख धोये, आचमन करे। भावना करें कि अपनी काया में स्थित जीवात्मा की तुष्टि के लिए भी प्रयास करेंगे ।

ॐ संवर्चसा पयसा सन्तनूभिः, अगन्महि मनसा स ऽंश शिवेन ।

त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायः, अनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ - २.२४

तर्पण के बाद पंच यज्ञ का क्रम चलाया जाता है ।

॥ ब्रह्मयज्ञ ॥

ब्रह्मयज्ञ में गायत्री विनियोग होता है। मरणोत्तर संस्कार के संदर्भ में एकत्रित सभी कुटुम्बी-हितैषी परिजन एक साथ बैठें। मृतात्मा के

स्नेह-उपकारों का स्मरण करें। उसकी शान्ति-सद्गति की कामना व्यक्त करते हुए सभी लोग भावनापूर्वक पाँच मिनट गायत्री मन्त्र का मानसिक जप करें, अन्त में अपने जप का पुण्य मृतात्मा के कल्याणार्थ अर्पित करने का भाव करें- यह न्यूनतम है। यदि सम्भव हो, तो शुद्धि दिवस के बाद त्रयोदशी तक भावनाशील परिजन मिल-जुलकर गायत्री जप का एक लघु अनुष्ठान पूरा कर लें। ब्रह्मयज्ञ को उसकी पूर्णाहुति मानें। संकल्प बोलें-

...नामाहं..नामः प्रेतत्वनिवृत्तिद्वारा ब्रह्मलोकावाप्तये...
परिमाणं गायत्री महामन्त्रानुष्ठानपुण्यं श्रद्धापूर्वकम् अहं
समर्पयिष्ये।

॥ देवयज्ञ ॥

देवयज्ञ में देववृत्तियों का पोषण किया जाए। दुष्प्रवृत्तियों के त्याग और सत्प्रवृत्तियों के अभ्यास का उपक्रम अपनाने से देवशक्तियाँ तुष्ट होती हैं, देववृत्तियाँ पुष्ट होती हैं। श्राद्ध के समय संस्कार करने वाले प्रमुख परिजन सहित उपस्थित सभी परिजनों को इस यज्ञ में यथाशक्ति भाग लेना चाहिए। अपने स्वभाव के साथ जुड़ी दुष्प्रवृत्तियों को सदैव के लिए या किसी अवधि तक के लिए छोड़ने, परमार्थपरक गतिविधियों को अपनाने का संकल्प कर लिया जाए, उसका पुण्य मृतात्मा के हितार्थ अर्पित किया जाए। संकल्प-

...नामाहं..नामकमृतात्मनः देवगतिप्रदानार्थं...दिनानि यावत्
मासपर्यन्तं-वर्षपर्यन्तं..दुष्प्रवृत्त्युन्मूलनैः... सत्प्रवृत्तिसंधारणैः
जायमानं पुण्यं मृतात्मनः समुत्कर्षणाय श्रद्धापूर्वकं अहं
समर्पयिष्ये।

॥ पितृयज्ञ ॥

यह कृत्य पितृयज्ञ के अन्तर्गत किया जाता है। जिस प्रकार तर्पण में जल के माध्यम से अपनी श्रद्धा व्यक्त की जाती है, उसी प्रकार हविष्यान्न के माध्यम से अपनी श्रद्धाभिव्यक्ति की जानी चाहिए। मरणोत्तर संस्कार में १२ पिण्डदान किये जाते हैं-जौ या गेहूँ के आटे में तिल, शहद, घृत, दूध मिलाकर लगभग एक-एक छटाँक आटे के पिण्ड बनाकर एक पत्तल पर रख लेने चाहिए। संकल्प के बाद एक-एक करके यह पिण्ड जिस पर रखे जा सकें,

ऐसी एक पत्तल समीप ही और रख लेनी चाहिए।

छः तर्पण जिनके लिए किये गये थे, उनमें से प्रत्येक वर्ग के लिए एक-एक पिण्ड है। सातवाँ पिण्ड मृतात्मा के लिए है। अन्य पाँच पिण्ड उन मृतात्माओं के लिए हैं, जो पुत्रादि रहित हैं, अग्निदग्ध हैं, इस या किसी जन्म के बन्धु हैं, उच्छिन्न कुल, वंश वाले हैं, उन सबके निमित्त ये पाँच पिण्ड समर्पित हैं। ये बारहों पिण्ड पक्षियों के लिए अथवा गाय के लिए किसी उपयुक्त स्थान पर रख दिये जाते हैं। मछलियों को चुगाये जा सकते हैं। पिण्ड रखने के निमित्त कुश बिछाते हुए निम्न मन्त्र बोलें।

ॐ कुशोऽसि कुश पुत्रोऽसि, ब्रह्मणा निर्मितः पुरा।
त्वय्यर्चितेऽर्चितः सोऽस्तु, यस्याहं नाम कीर्तये ॥

॥ पिण्ड समर्पण प्रार्थना ॥

पिण्ड तैयार करके रखें, हाथ जोड़कर पिण्ड समर्पण के भाव सहित नीचे लिखे मन्त्र बोले जाएँ-

ॐ आब्रह्मणो ये पितृवंशजाता, मातुस्तथा वंशभवा मदीयाः।
वंशद्वये ये मम दासभूता, भृत्यास्तथैवाश्रित सेवकाश्च॥
मित्राणि शिष्याः पशवश्च वृक्षाः, दृष्टाश्च स्मृष्टाश्च कृतोपकाराः।
जन्मान्तरे ये मम संगताश्च, तेषां स्वधा पिण्डमहं ददामि॥

॥ पिण्डदान ॥

पिण्ड दाहिने हाथ में लिया जाए। मन्त्र के साथ पितृतीर्थ मुद्रा से पिण्ड किसी थाली या पत्तल में क्रमशः स्थापित करें—

१. प्रथम पिण्ड देवताओं के निमित्त—

ॐ उदीरतामवर उत्परास, ऽ उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।

असुं यऽईयुरवृका ऋतज्ञाः, ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु। -१९.४९

२. दूसरा पिण्ड ऋषियों के निमित्त—

ॐ अंगिरसो नः पितरो नवगवा, अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।

तेषां वयं ऽसुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥ - १९.५०

३. तीसरा पिण्ड दिव्य मानवों के निमित्त—

ॐ आयन्तु नः पितरः सोम्यासः, अग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तः, अधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ - १९.५८

४. चौथा पिण्ड दिव्य पितरों के निमित्त—

ॐ ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं, पयः कीलालं परिस्रुतम् ।

स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ - २.३४

५. पाँचवाँ पिण्ड यम के निमित्त—

ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः, पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः
स्वधा नमः, प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ।
अक्षन्पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्यध्वम् ।
- १९.३६

६. छठवाँ पिण्ड मनुष्य - पितरों के निमित्त—

ॐ ये चेह पितरो ये च नेह, याँश्च विद्वा याँ २ उ च न प्रविद्वा ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः, स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥
- १९.६७

७. सातवाँ पिण्ड मृतात्मा के निमित्त—

ॐ नमो वः पितरो रसाय, नमो वः पितरः शोषाय, नमो वः
पितरो जीवाय, नमो वः पितरः स्वधायै, नमो वः पितरो घोराय,
नमो वः पितरो मन्यवे, नमो वः पितरः पितरो, नमो वो गृहात्रः
पितरो, दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः, पितरो वासोऽआधत्त । - २.३२

८. आठवाँ पिण्ड पुत्रदार रहितों के निमित्त—

ॐ पितृवंशे मृता ये च, मातृवंशे तथैव च ।
गुरुश्चसुरबन्धूनां, ये चान्ये बान्धवाः स्मृताः ॥
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः, पुत्रदारविवर्जिताः ।
तेषां पिण्डो मया दत्तो, ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

९. नौवाँ पिण्ड उच्छिन्न कुलवंश वालों के निमित्त—

ॐ उच्छिन्नकुलवंशानां, येषां दाता कुले नहि ।

धर्मपिण्डो मया दत्तो, ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

१०. दसवाँ पिण्ड गर्भपात से मर जाने वालों के निमित्त—

ॐ विरूपा आमगर्भाश्च, ज्ञाताज्ञाताः कुले मम ।

तेषां पिण्डो मया दत्तो, ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

११. ग्यारहवाँ पिण्ड अग्निदग्धों आदि के निमित्त—

ॐ अग्निदग्धाश्च ये जीवा, ये प्रदग्धाः कुले मम ।

भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु, धर्मपिण्डं ददाम्यहम् ॥

१२. बारहवाँ पिण्ड इस जन्म या अन्य जन्म के बंधुओं के निमित्त—

ॐ ये बान्धवाऽ बान्धवा वा, येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।

तेषां पिण्डो मया दत्तो, ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

यदि तीर्थ श्राद्ध में, पितृपक्ष में से एक से अधिक पितरों की शान्ति के लिए पिण्ड अर्पित करने हों, तो नीचे लिखे वाक्य में पितरों के नाम-गोत्र आदि जोड़ते हुए वांछित संख्या में पिण्डदान किये जा सकते हैं ।

... गोत्रस्य अस्मद्.. नाम्नो, अक्षयतृप्त्यर्थं इदं पिण्डं तस्मै स्वधा ॥

पिण्ड समर्पण के बाद पिण्डों पर क्रमशः दूध, दही और मधु चढ़ाकर पितरों से तृप्ति की प्रार्थना की जाती है ।

(१) निम्न मन्त्र पढ़ते हुए पिण्ड पर दूध चढ़ाएँ—

ॐ पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु, पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः ।

पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ - १८.३६

पिण्डदाता निम्नांकित मन्त्रांश को दुहराएँ—

ॐ दुग्धम् । दुग्धम् । दुग्धम् । तृप्यध्वम् । तृप्यध्वम् । तृप्यध्वम् ॥

(२) निम्नांकित मन्त्र से पिण्ड पर दही चढ़ाएँ—

ॐ दधिक्वावोऽ अकारिषं, जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।

सुरभि नो मुखाकरत्त्रण, आयूँ ऽषि तारिषत् ॥ - २३.३२

पिण्डदाता निम्नांकित मन्त्रांश दुहराएँ—

ॐ दधि । दधि । दधि । तृप्यध्वम् । तृप्यध्वम् । तृप्यध्वम् ।

(३) नीचे लिखे मन्त्रों के साथ पिण्डों पर शहद चढ़ाएँ ।

ॐ मधुवाता ऽऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः
सन्त्वोषधीः । ॐ मधु नक्तमुतोषसो, मधुमत्पार्थिव ऽंश रजः ।
मधु द्यौरस्तु नः पिता । ॐ मधुमात्रो वनस्पतिर्मधुमाँरऽअस्तु
सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ।

- १३.२७-२९

पिण्डदानकर्त्ता निम्नांकित मन्त्रांश को दुहराएँ—

ॐ मधु । मधु । मधु । तृप्यध्वम् । तृप्यध्वम् । तृप्यध्वम् ॥

॥ भूतयज्ञ-पंचबलि ॥

भूतयज्ञ के निमित्त पंचबलि प्रक्रिया की जाती है । विभिन्न योनियों में
संव्याप्त जीव चेतना की तुष्टि हेतु भूतयज्ञ किया जाता है । अलग-अलग
पत्तों या एक ही बड़ी पत्तल पर, पाँच स्थानों पर भोज्य पदार्थ रखे जाते हैं ।
उर्द-दाल की टिकिया तथा दही इसके लिए रखा जाता है । पाँचों भाग रखें ।
क्रमशः मन्त्र बोलते हुए एक-एक भाग पर अक्षत छोड़कर बलि समर्पित करें ।

(१) गोबलि - पवित्रता की प्रतीक गऊ के निमित्त—

ॐ सौरभ्यैः सर्वहिताः, पवित्राः पुण्यराशयः ।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं, गावस्त्रैलोक्यमातरः ॥
इदं गोभ्यः इदं न मम ।

(२) कुक्कुरबलि - कर्तव्यनिष्ठा के प्रतीक श्वान के निमित्त—

ॐ द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ, वैवस्वतकुलोद्भवौ ।
ताभ्यामन्नं प्रदास्यामि, स्यातामेतावहिंसकौ ॥
इदं श्वभ्यां इदं न मम ॥

(३) काकबलि - मलीनता निवारक काक के निमित्त—

ॐ ऐन्द्रवारुणवायव्या, याम्या वै नैर्ऋतास्तथा ।
वायसाः प्रतिगृह्णन्तु, भूमौ पिण्डं मयोज्झितम् ॥
इदं वायसेभ्यः इदं न मम ॥

(४) देवादिबलि - देवत्व संवर्धक शक्तियों के निमित्त—

ॐ देवाः मनुष्याः पशवो वयांसि, सिद्धाः सयक्षोरगदैत्यसंघाः ।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता, ये चात्रमिच्छन्ति मया प्रदत्तम् ॥
इदं अन्नं देवादिभ्यः इदं न मम ।

(५) पिपीलिकादिबलि - श्रमनिष्ठा एवं सामूहिकता की प्रतीक
चींटियों के निमित्त—

ॐ पिपीलिकाः कीटपतंगकाद्याः, बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः ।
तेषां हि तृप्यर्थमिदं मयात्रं, तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ॥

इदं अन्नं पिपीलिकादिभ्यः इदं न मम ॥

बाद में गोबलि गऊ को, कुक्कुरबलि श्वान को, काकबलि पक्षियों को,
देवबलि कन्या को तथा पिपीलिकादिबलि चींटी आदि को खिला दिया जाए ।

॥ मनुष्ययज्ञ-श्राद्ध संकल्प ॥

इसके अन्तर्गत दान का विधान है । दिवंगत आत्मा ने उत्तराधिकार में
जो छोड़ा है, उसमें से उतना अंश ही स्वीकार करना चाहिए, जो पीछे वाले
बिना कमाऊ बालकों या स्त्रियों के निर्वाह के लिए अनिवार्य हो-कमाऊ
सन्तान को उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए । दिवंगत आत्मा के अन्य अहसान
ही इतने हैं कि उन्हें अनेक जन्मों तक चुकाना पड़ेगा, फिर नया ऋण भारी
ब्याज सहित चुकाने के लिए और क्यों सिर पर लादा जाए । असमर्थ स्थिति
में अभिभावकों की सेवा स्वीकार करना उचित था, पर जब वयस्क और
कमाऊ हो गये, तो फिर उसे लेकर “हराम-खाऊ” मुफ्तखोरों में अपनी गणना
क्यों कराई जाए ?

पूर्वजों के छोड़े हुए धन में कुछ अपनी ओर से श्रद्धांजलि मिलाकर
उनकी आत्मा के कल्याण के लिए दान कर देना चाहिए-यही सच्चा श्राद्ध
है । पानी का तर्पण और आटे की गोली का पिण्डदान पर्याप्त नहीं, वह क्रिया
कृत्य तो मात्र प्रतीक हैं । श्रद्धा की वास्तविक परीक्षा उस श्राद्ध में है कि पूर्वजों
की कमाई को उन्हीं की सद्गति के लिए, सत्कर्मों के लिए दान रूप में समाज
को वापस कर दिया जाए । अपनी कमाई का जो सदुपयोग, मोह या लोभवश
स्वर्गीय आत्मा नहीं कर सकी थी, उस कमी की पूर्ति उसके उत्तराधिकारियों
को कर देनी चाहिए ।

प्राचीनकाल में ब्राह्मण का व्यक्तित्व एक समग्र संस्था का प्रतिरूप
था । उन्हें जो दिया जाता था, उसमें से न्यूनतम निर्वाह लेकर शेष को समाज
की सत्प्रवृत्तियों में खर्च करते थे । अपना निर्वाह भी इसीलिए लेते थे कि

उन्हें निरन्तर परमार्थ प्रयोजनों में ही लगा रहना पड़ता था। आज वैसे ब्राह्मण नहीं हैं, इसलिए उनका ब्रह्मभोज भी साँप के चले जाने पर लकीर पीटने की तरह है। दोस्तों-रिश्तेदारों को मृत्यु के उपलक्ष्य में दावत खिलाना मूर्खता और उनका खाना निर्लज्जता है, इसलिए मृतकभोज की विडम्बना में न फँसकर श्राद्धधन परमार्थ प्रयोजन के लिए लगा देना चाहिए, जिससे जनमानस में सद्ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न हो और वे कल्याणकारी सत्य पर चलने की प्रेरणा प्राप्त करें-यही सच्चा श्राद्ध है।

कन्या भोजन, दीन-अपाहिज, अनाथों को जरूरत की चीजें देना- इस प्रक्रिया के प्रतीकात्मक उपचार हैं। इसके लिए तथा लोक हितकारी पारमार्थिक कार्यों के लिए दिये जाने वाले दान की घोषणा श्राद्ध संकल्प के साथ की जानी चाहिए।

॥ संकल्प ॥

नामाहं... नामकमृतात्मनः शान्ति-सद्गति-निमित्तं
लोकोपयोगिकार्यार्थं..... परिमाणे धनदानस्य कन्याभोजनस्य वा
श्रद्धापूर्वकं संकल्पम् अहं करिष्ये ॥

संकल्प के बाद निम्न मन्त्र बोलते हुए अक्षत-पुष्प देव वेदी पर चढ़ाएँ।

ॐ उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशतऽ आ
वह पितृन्हविषेऽअत्तवे ॥ ॐ दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वाऽवतु
बृहत्साम, पंचदशस्तोमो ग्रीष्मऽऋतुः क्षत्रं द्रविणम् ॥

-१९.७० १०.११

पंचयज्ञ पूरे करने के बाद अग्नि स्थापना करके गायत्री यज्ञ सम्पन्न करें, फिर नीचे लिखे मन्त्र से ३ विशेष आहुतियाँ दें।

ॐ सूर्यपुत्राय विद्महे, महाकालाय धीमहि। तन्नो यमः
प्रचोदयात् स्वाहा। इदं यमाय इदं न मम ॥ - य० गा०

इसके बाद स्विष्टकृत-पूर्णाहुति आदि करते हुए समापन करें। विसर्जन के पूर्व पितरों तथा देव शक्तियों के लिए भोज्य पदार्थ थाली में सजाकर नैवेद्य अर्पित करें, फिर क्रमशः क्षमा प्रार्थना, पिण्ड विसर्जन, पितृ विसर्जन तथा देव विसर्जन करें।

॥ विसर्जन ॥

पिण्ड विसर्जन- नीचे लिखे मन्त्र के साथ पिण्डों पर जल सिंचित करें।

ॐ देवा गातुविदोगातुं, वित्त्वा गातुमित।

मनसस्पतऽ इमं देव, यज्ञं स्वाहा वाते धाः ॥ - ८.२१

पितृ विसर्जन- पितरों का विसर्जन तिलाक्षत छोड़ते हुए करें।

ॐ यान्तु पितृगणाः सर्वे, यतः स्थानादुपागताः।

सर्वे ते हृष्टमनसः, सर्वान् कामान् ददन्तु मे ॥

ये लोकाः दानशीलानां, ये लोकाः पुण्यकर्मणाम्।

सम्पूर्णान् सर्वभोगैस्तु, तान् व्रजध्वं सुपुष्कलान् ॥

इहास्माकं शिवं शान्तिः, आयुरारोग्यसम्पदः।

वृद्धिः सन्तानवर्गस्य, जायतामुत्तरोत्तरा ॥

देव विसर्जन- अन्त में पुष्पाक्षत छोड़ते हुए देव विसर्जन करें।

ॐ यान्तु देवगणाः सर्वे, पूजामादाय मामकीम्।

इष्ट कामसमृद्धयर्थं, पुनरागमनाय च ॥

* * *

॥ जन्मदिवस संस्कार ॥

यों प्रचलित अनेक पर्व-त्यौहार आते और मनाये जाते हैं, पर व्यक्तिगत दृष्टि से मनुष्य का अपना जन्मदिन ही उसके लिए सबसे बड़े हर्ष, गौरव एवं सौभाग्य का दिन हो सकता है। राम के जन्मदिन की तिथि रामनवमी और कृष्ण का जन्मदिन-जन्माष्टमी जितनी महत्त्वपूर्ण है, उतना ही किसी सामान्य व्यक्ति के जीवन में उसका जन्मदिन किसी भी प्रकार कम आनन्द एवं उल्लास का नहीं होता। उसे ठीक तरह मनाया जाए, तो अपना प्रसुप्त आनन्द और उल्लास जगेगा। इसी अवसर पर यदि थोड़ा अधिक गम्भीर आत्म-निरीक्षण कर लिया जाए और आगे के लिए कुछ ठोस सदुपयोग की बात सोच ली जाए तो वह दिन एक नये सूर्योदय जैसा प्रकाशवान् हो सकता है। बुद्ध, वाल्मीकि, सूरदास, तुलसी, अंगुलिमाल आदि के पूर्व जीवन बहुत अच्छे न थे, पर एक दिन उनकी अन्तःस्फुरणा जग पड़ी, तो उन्होने अपनी दिशा ही बदल दी। यह बदलना इतना महत्त्वपूर्ण हुआ कि वे नर से नारायण बन गये। जन्म-दिन की उल्लास भरी घड़ी में यदि मनुष्य यत्किंचित् भी आत्म-निर्माण की बात सोचने लगे, तो वह उसी अनुपात में उसके सौभाग्य की घड़ी सिद्ध हो सकती है।

जन्मदिन दिखने में सामान्य; किन्तु प्रभाव में असामान्य संस्कार है। किसी वर्ग- किसी भी स्तर के व्यक्तियों के बीच इसे लोकप्रिय बनाया जा सकता है। एक इसी संस्कार के माध्यम से जन चेतना को झकझोर कर सदाशयता से जोड़ देने का काम बड़ी कुशलता से सम्पन्न किया जा सकता है। सभी सृजन शिल्पियों को कटिबद्ध होकर इसे लोकप्रिय बनाना चाहिए।

॥ विशेष व्यवस्था ॥

जन्मदिन संस्कार यज्ञ के साथ ही मनाया जाना चाहिए। अन्तःकरण को प्रभावित करने की यज्ञ की अपनी क्षमता विशेष है; परन्तु चूँकि इसे जन-जन का आन्दोलन बनाना है। इसलिए यदि परिस्थितियाँ अनुकूल न हों तो केवल दीपयज्ञ करके भी जन्मदिन संस्कार कराये जा सकते हैं। नीचे लिखी व्यवस्थाएँ पहले से बनाकर रखी जाएँ।

पंच तत्त्व पूजन के लिए चावल की पाँच छोटी ढेरियाँ पूजन वेदी पर बना देनी चाहिए। पाँच तत्त्वों के लिए पाँच रंग के चावल भी रंग कर अलग-अलग छोटी डिब्बियों या पुड़ियों में रखे जा सकते हैं। उनकी रंगीन ढेरियाँ लगा देने से शोभा और भी अच्छी बन जाती है। तत्त्वों के क्रम और रंग इस प्रकार हैं—(१) पृथ्वी-हरा, (२) वरुण-काला, (३) अग्नि-लाल, (४) वायु-पीला, (५) आकाश-सफेद। इसी क्रम से ढेरियाँ लगाकर रखनी चाहिए।

दीपदान- जन्मोत्सव के लिए दीपक बनाकर रखें जाएँ। जितने वर्ष पूरे किये हों, उतने छोटे दीपक तथा नये वर्ष का थोड़ा बड़ा दीपक बनाया जाए। दीपक आटे के भी बनाये जा सकते हैं और मिट्टी के भी रखे जा सकते हैं। अभाव में मोमबत्तियों के टुकड़े भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं, उन्हें थाली या ट्रे में सुन्दर आकारों में सजाकर रखना चाहिए।

व्रत धारण में क्या व्रत लिया जाना है? इसकी चर्चा पहले से ही कर लेनी चाहिए।

॥ विशेष कर्मकाण्ड ॥

अन्य संस्कारों की तरह मंगलाचरण से रक्षाविधान तक के उपचार पूरे किये जाएँ। इसके बाद क्रमशः ये कर्मकाण्ड कराये जाएँ।

॥ पंचतत्त्व पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - शरीर पंच तत्त्वों से बना है। इस संसार का प्रत्येक पदार्थ मिट्टी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन पाँच तत्त्वों से बना है। इसलिए इस सृष्टि के आधारभूत-ये पाँच ही दिव्य तत्त्व देवता हैं। उपकारी के प्रति कृतज्ञता की भावनाओं से अन्तःकरण ओत-प्रोत रखना भारतीय संस्कृति का अविच्छिन्न अंग है। हम जड़ और चेतन सभी उपकारियों के प्रति कृतज्ञता-भावना की अभिव्यक्ति के लिए पूजा-प्रक्रिया का अवलम्बन लेते हैं। पूजा से इन जड़ पदार्थों, अदृश्य शक्तियों, स्वर्गीय आत्माओं का भले ही कोई लाभ न होता हो, पर हमारी कृतज्ञता का प्रसुप्त भाव जाग्रत होने से हमारी आन्तरिक उत्कृष्टता बढ़ती ही है। पंच तत्त्वों का पूजन विश्व के आधार स्तम्भ होने की महत्ता के निमित्त किया जाता है।

इस पूजन का दूसरा उद्देश्य यह है कि इन पाँचों के सदुपयोग का ध्यान रखा जाए। शरीर जिन तत्त्वों से बना है, उनका यदि सही रीति-नीति से उपयोग करते रहा जाए, तो कभी भी अस्वस्थ होने का अवसर न आए। पृथ्वी से उत्पन्न अन्न का कितना, कब और कैसे उपयोग किया जाए, इसका ध्यान रखें तो पेट खराब न हो। यदि आहार की सात्त्विकता, मात्रा एवं व्यवस्था का ध्यान रखा जाए, तो न अपच हो और न किसी रोग की सम्भावना बने। जल की स्वच्छता एवं उचित मात्रा में सेवन करने का, विधिवत् स्थान का, वस्त्र, बर्तन, घर आदि की सफाई, जल के उचित प्रयोग का ध्यान रखा जाए, तो समग्र स्वच्छता बनी रहे, शरीर, मन तथा वातावरण सभी कुछ स्वच्छ रहे। अग्नि की उपयोगिता सूर्य ताप को शरीर, वस्त्र, घर आदि में पूरी तरह प्रयोग करने में है। भोजन में अग्नि का सदुपयोग भाप द्वारा पकाये जाने में है। शरीर के भीतर अग्नि ब्रह्मचर्य द्वारा सुरक्षित रहती एवं बढ़ती है। स्वच्छ वायु का सेवन, खुली जगहों में निवास, प्रातः टहलने जाना, प्राणायाम, गन्दगी से वायु का दूषित न होने देना आदि वायु की प्रतिष्ठा है। आकाश की पोल में ईश्वर, विचार शब्द आदि भरे पड़े हैं, उनका मानसिक एवं भावना क्षेत्र में इस प्रकार उपयोग किया जाए, कि हमारी अन्तःचेतना उत्कृष्ट स्तर की ओर चले, यह जानना, समझना आकाश तत्त्व का उपयोग है। इसी सदुपयोग के द्वारा हम सुख-शान्ति और समृद्धि का पथ-प्रशस्त कर सकते हैं। पंच तत्त्वों का पूजन, हमारा ध्यान इनके सदुपयोग की ओर आकर्षित करता है।

तीसरी प्रेरणा यह है कि शरीर पंच तत्त्वों का बना होने के कारण जरा, मृत्यु से बँधा हुआ है। यह एक वाहन और माध्यम है। जड़ होने के कारण इसका महत्त्व कम है। इसे एक उपकरण मात्र माना जाए। शरीर की सुख-सुविधा को इतना महत्त्व न दिया जाए कि आत्मा के स्वार्थ पिछड़ जाएँ। आत्मा की उन्नति के लिए पंच तत्त्वों से बना यह शरीर मिलता है, इसलिए उसका सदुपयोग निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति के लिए ही किया जाए।

क्रिया और भावना - प्रत्येक तत्त्व के पूजन के पूर्व उसकी प्रेरणाएँ उभारी जाएँ। हाथ में अक्षत, पुष्प देकर मन्त्रोच्चार के साथ सम्बन्धित प्रतीक पर अर्पित कराएँ। भावना की जाए कि सृष्टि रचना के इन घटकों के अन्दर जो सूक्ष्म संस्कार हैं, वे पूजन के द्वारा साधक को प्राप्त हो रहे हैं।

॥ पृथ्वी ॥

ॐ मही द्यौः पृथिवी च नऽ, इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ॐ पृथिव्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि।

- ८.३२

॥ वरुण ॥

ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः, तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुश, ११ स मा नऽ आयुः प्रमोषीः ॥ ॐ वरुणाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि।

- १८.४९

॥ अग्नि ॥

ॐ त्वं नो ऽ अग्ने वरुणस्य, विद्वान् देवस्य हेडोऽ अवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो, विश्वा द्वेषा ११ सि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥ ॐ अग्नये नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि।

- २१.३

॥ वायु ॥

ॐ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वर, ११ सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्। वायो अस्मिन्सवने मादयस्व, यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ॐ वायवे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि।

- २७.२८

॥ आकाश ॥

ॐ या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षतम्। उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां, त्वेष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥ ॐ आकाशाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि।

- ७.११

॥ दीपदान ॥

शिक्षण और प्रेरणा - जन्मोत्सव का दूसरा कर्मकाण्ड दीपदान है। जितने वर्ष की आयु हो, उतने दीपक एक सुसज्जित चौकी पर बनाकर सजाये जाते हैं। आटे के ऊपर बत्ती वाले घृत दीप एक थाली में इस तरह सजाकर रखे जा सकते हैं कि उनका 'ॐ' स्वस्तिक अथवा कोई और सुन्दर रूप बन जाए। इन दीपकों के आस-पास पुष्प, फल, धूपबत्तियाँ, गुलदस्ते या कोई दूसरी चीजें सुन्दरता बढ़ाने के लिए रखी जा सकती हैं। कलात्मक सुरुचि भीतर हो, तो सुसज्जा के अनेक प्रकार बन सकते हैं। इन दीपकों का पूजन किया जाता है।

जीवन का प्रत्येक वर्ष दीपक के समान प्रकाशवान् रहे, तभी उसकी सार्थकता है। दीपक स्वयं तिल-तिल करके जलता है और अन्धकार में प्रकाश उत्पन्न करता है, इस रीति-नीति का प्रतीक होने के कारण ही दीपक को प्रत्येक मांगलिक कार्य में पूजा जाता है एवं उसे प्रधानता मिलती है। हमारे जीवन की रीति-नीति भी ऐसी ही होनी चाहिए।

दीपक को ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। अज्ञान को अन्धकार व ज्ञान को प्रकाश की उपमा दी जाती है। जिस सीमा तक हमारा मस्तिष्क या हृदय अज्ञानग्रस्त है, उतना ही हम अन्धेरे में भटक रहे हैं। मस्तिष्क का अन्धकार दूर करने के लिए हमें शिक्षा और हृदय का अन्धकार दूर करने के लिए विद्या-ऋतम्भरा ज्ञान का अधिकाधिक मात्रा में संग्रह करना चाहिए। आत्मज्ञान का वैसा दीपक हमें अन्तःकरण में जलाना चाहिए, जैसा रामायण के उत्तरकाण्ड में विस्तारपूर्वक बताया गया है। दीपदान में ऐसी ही अनेक प्रेरणाएँ सन्निहित हैं।

क्रिया और भावना - थाली में सजाये दीपकों को क्रमशः प्रज्वलित किया जाए। उसके साथ सस्वर गायत्री मन्त्र का पाठ चलाएँ। यदि यज्ञ न करके केवल दीपयज्ञ ही करना हो, तो गायत्री मन्त्र के साथ स्वाहा लगाकर दीपक जलाने की प्रक्रिया को आहुति मानते हुए यज्ञीय वातावरण बनाया जाए।

भावना की जाए कि मनुष्य कितने भी कम साधनों में जी रहा हो, छोटे से नाचीज दीपक की तरह सबका प्रिय प्रकाशदाता बन सकता है। छोटी सी

पात्रता, थोड़ा सा स्नेह और जरा-सी वर्तिका (लगन) को ठीक क्रम से सजाकर ज्योतिदान प्राप्त कर सकता है। ज्योतिर्य जीवन की कामना, प्रार्थना करते हुए दिव्य शक्तियों द्वारा उसकी पूर्ति को भावना की जानी चाहिए।

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा। सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ - ३६.२४

॥ व्रतधारण ॥

अगला क्रम जन्मोत्सव का व्रत धारण है। व्रतों के बन्धन में बँधा हुआ व्यक्ति ही किसी उच्च लक्ष्य की ओर दूर तक अग्रसर हो सकने में समर्थ होता है। मनुष्य को शुभ अवसरों पर भावनात्मक वातावरण में देवताओं की उपस्थिति में-अग्नि की साक्षी में व्रतधारण करने चाहिए और उनका पालन करने के लिए साहस एकत्रित करना चाहिए।

शिक्षण एवं प्रेरणा - दुष्प्रवृत्तियों का त्याग, व्रतशीलता का आरम्भिक चरण है। मांसाहार, तम्बाकू, भाँग, गाँजा, अफीम, शराब आदि नशों का सेवन, व्यभिचार, चोरी, बेईमानी, जुआ, फैशन-परस्ती, आलस्य, गन्दगी, क्रोध, चटोरापन, कामुकता, शेखीखोरी, कटुभाषण, ईर्ष्या, द्वेष, कृतघ्नता आदि बुराइयों को जो अपने में विद्यमान हों, उन्हें छोड़ना चाहिए। कितनी ही भयानक कुरीतियाँ हमारे समाज में ऐसी हैं, जो अतीव हेय होते हुए भी धर्म के नाम पर प्रचलित हैं। किसी वंश में जन्म लेने के कारण किसी को नीच मानना, स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा अनधिकारिणी समझना, विवाहों में उन्मादी की तरह पैसे की होली फूँकना, दहेज, मृत्युभोज, देवताओं के नाम पर पशुबलि, भूत-पलीत, टोना-टोटका, अन्धविश्वास, शरीर का छेदना या गोदना, गाली-गलौज की असभ्यता, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, श्रम का तिरस्कार आदि अनेक सामाजिक कुरीतियाँ हमारे समाज में प्रचलित हैं। इन मान्यताओं के विरुद्ध-विद्रोह करने की आवश्यकता है। इन्हें तो स्वयं हमें ही त्यागना चाहिए। इसी प्रकार अनेक बुराइयाँ हो सकती हैं। उनमें से जो अपने में हों, उन्हें संकल्पपूर्वक त्यागने के लिए जन्म-दिन का शुभ अवसर बहुत ही उत्तम है।

यदि इस प्रकार की बुराइयाँ न हों, उन्हें पहले से ही छोड़ा जा चुका हो, तो अपने में सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्द्धन का व्रत इस अवसर पर ग्रहण करना चाहिए। रात को जल्दी सोना, प्रातः जल्दी उठना, व्यायाम, नियमित उपासना, स्वाध्याय, गुरुजनों का चरण स्पर्शपूर्वक अभिवादन, सादगी, मितव्ययिता, प्रसन्न रहने की आदत, मधुर भाषण, दिनचर्या बनाकर समय-क्षेप, निरालस्य, परिवार निर्माण के लिए नियमित समय देना, लोकसेवा के लिए समयदान आदि अनेक सत्कार्य ऐसे हो सकते हैं, जो अपने गुण, कर्म, स्वभाव में सम्मिलित किये जाने चाहिए। इस प्रकार की कम से कम एक अच्छी आदत अपनाने का संकल्प लेना चाहिए और कम से कम एक बुराई भी उसी अवसर पर छोड़ देनी चाहिए। ये दुष्प्रवृत्तियाँ छोड़ने और सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने का क्रम यदि हर जन्म-दिन पर चलता रहे, तो कुछ ही वर्षों में उसका परिणाम व्यक्तित्व में कायाकल्प की तरह दृष्टिगोचर होने लगेगा और जन्मोत्सवों का क्रम जीवन में दैवी वरदान की तरह मंगलमय परिणाम प्रस्तुत कर सकेगा।

क्रिया और भावना - लिये गये व्रतों का उल्लेख किया जाए। उनका स्मरण रखते हुए व्रतपति देवशक्तियों से उनकी वृत्ति एवं शक्ति सहित मार्गदर्शन की याचना करें। दोनों हाथ उठाकर व्रतधारण के मन्त्र बोलें-

ॐ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि
तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि ॥१॥

ॐ वायो व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि
तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि ॥२॥

ॐ सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि
तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि ॥३॥

ॐ चन्द्र व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि
तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि ॥४॥

ॐ व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि
तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहम्, अनृतात्सत्यमुपैमि ॥५॥

- मं० ब्रा० १.६.९-१३

॥ विशेष- आहुति ॥

व्रत धारण के बाद यज्ञादि क्रम पूरे किये जाएँ। गायत्री मन्त्र की आहुति के बाद मृत्युञ्जय मन्त्र की आहुतियाँ दी जाएँ। यदि केवल दीपयज्ञ किया गया हो, तो सभी लोग ५ बार मृत्युञ्जय मन्त्र का सस्वर पाठ करें।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे, सुगन्धिष्णुष्टिवर्धनम्।

उर्वारुकमिव बन्धनान्, मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् स्वाहा।

इदं महामृत्युञ्जयाय इदं नमः।

- ३.६०

इसके बाद यज्ञ के शेष उपचार पूरे करके आशीर्वाद आदि के साथ समापन किया जाए।

॥ विवाह दिवस संस्कार ॥

जिनके विवाह नहीं हुए उनके संस्कार को सुयोग्य व्यवस्थापकों एवं पुरोहितों द्वारा अत्यन्त प्रभावोत्पादक बनाया जाना चाहिए; पर जिनके हो चुके हैं, उनके सम्बन्ध में "हो गया सो हो गया" कहकर छुटकारा नहीं पाया जा सकता, उनको यह लाभ पुनः मिलना चाहिए। औंधे-सीधे ढंग से बेगार भुगतने की भगदड़ में उन्हें जो मिल नहीं पाया है, इसके लिए उत्तम-सरल और उपयोगी तरीका विवाह दिवसोत्सव मनाया जाना ही हो सकता है। जिस दिन विवाह हुआ था, हर वर्ष उस दिन एक छोटा उत्सव-समारोह मनाया जाए। मित्र-परिजन एकत्रित हों, विवाह का पूरा कर्मकाण्ड तो नहीं, पर उनमें प्रयुक्त होने वाली प्रमुख क्रियाएँ पुनः की जाएँ तथा विवाह के कर्तव्य-उत्तरदायित्वों को नये सिरों से पुनः समझाया जाए।

हर वर्ष इस प्रकार का व्रत धारण, प्रशिक्षण, संकल्प एवं धर्मानुष्ठान किया जाता रहे, तो उससे दोनों को अपने कर्तव्य एवं उत्तरदायित्वों को पालने-निबाहने की निश्चय ही अधिक प्रेरणा मिलेगी। उसी दिन दोनों परस्पर विचार-विनिमय करके अपनी-अपनी भूलों को सुधारने तथा एक-दूसरे के अधिक समीप आने के उपाय सुझाने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। विवाह दिन की पुरानी आनन्दमयी स्मृति का स्मरण कर पुनः अन्तःकरण

को प्रफुल्लित कर सकते हैं। इस प्रकार वह सुनहरा दिन एक दिन के लिए हर साल नस-नाड़ियों में उल्लास भरने के लिए आ सकता है और विवाह कर्तव्यों को नये सिरे से निबाहने की प्रेरणा दे सकता है।

बन्दूकों के लाइसेन्स हर साल बदलने पड़ते हैं, रेडियो का लाइसेन्स हर वर्ष नया मिलता है। मोटरों के लाइसेन्स का भी हर साल नवीनीकरण करना पड़ता है। विवाह के कर्तव्यों को ठीक तरह पालने का लेखा-जोखा उपस्थित करने, भूल-चूक को सुधारने और अगले वर्ष सावधानी बरतने के विवाह लाइसेन्स का यदि हर वर्ष नवीनीकरण कराया जाए, तो इससे कुछ हानि नहीं, हर दृष्टि से लाभ ही लाभ है। संसार के अन्य देशों में यह उत्सव सर्वत्र मनाये जाते हैं, अन्तर इतना ही है कि वे केवल खुशी बढ़ाने के मनोरंजन तक ही उसे सीमित रखते हैं, हमें उसे धर्म प्रेरणा से ओत-प्रोत करने वाले धर्मानुष्ठान की तरह नियोजित करना है।

संकोच-अनावश्यक- इस प्रथा के प्रचलन में एक बड़ी कठिनाई यह है कि हमारे देश में विवाह को, दाम्पत्य जीवन को झिझक-संकोच एवं लज्जा का विषय माना जाने लगा है, उसे लोग छिपाते हैं। दूसरों को देखकर स्त्रियाँ अपने पतियों से घूँघट काढ़ लेती हैं और पति अपनी पत्नी की तरफ से आँखें नीची कर लेते हैं। विवाह के अवसर पर वधू बड़े संकोच के साथ डरती-झिझकती कदम उठाकर आती है, यह अनावश्यक संकोचशीलता निरर्थक है। भाई-भाइयों की तरह पति-पत्नी भी दो साथी हैं। विवाह न तो चोरी है, न पाप। दो व्यक्तियों का धर्मपूर्वक द्वैत को अद्वैत में परिणत करने का व्रत-बन्ध ही विवाह अथवा दाम्पत्य सम्बन्ध है। अवश्य ही अश्लील चेष्टाएँ अथवा भाव भंगिमाएँ खुलेरूप से निषिद्ध मानी जानी चाहिए; पर साथ-साथ बैठने-उठने, बात करने की मानवोचित रीति-नीति में अनावश्यक संकोच न बरता जाए— इसमें न तो कोई समझदारी है, न कोई तुक। इस बेतुकी को यदि हटा दिया जाए, तो इससे मर्यादा का तनिक भी उल्लंघन नहीं होता। जब अनेक अवसरों पर पति-पत्नी पास-पास बैठ सकते हैं, कोई हवन आदि धर्मकृत्य कर सकते हैं, साथ-साथ तीर्थ यात्रा आदि कर सकते हैं, तो विवाह दिवसोत्सव पर किये जानेवाले साधारण से हवन में किसी को क्यों संकोच होना चाहिए। गायत्री हवन के साथ-साथ चार-पाँच छोटे-छोटे

अन्य (विवाह दिवसोत्सव के) विधि-विधान जुड़े हुए हैं और प्रवचनों का विषय दाम्पत्य जीवन होता है। इनके अतिरिक्त और कुछ भी बात तो ऐसी नहीं है, जिसके लिए झिझक एवं संकोच किया जाए, विवाह की चर्चा करने पर जैसे वर-वधू सकुचाते हैं, वैसी ही कुछ झिझक विवाह दिवसोत्सव के अवसर पर दिखाई जाती है। इसमें औचित्य तनिक भी नहीं, विचारशील लोगों के लिए इस अकारण की संकोचशीलता को छोड़ने में कुछ अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिए। अनेक प्रगतिशील दम्पती अपने विवाह दिवस मनाते हैं। कोई दिशा धारा न होने से, छुट्टी, पिकनिक, मित्रों की पार्टी, सिनेमा जैसे छुटपुट उपचारों तक ही सीमित रह जाते हैं, ऐसे लोगों को भावनात्मक-धर्म समारोहपूर्वक विवाह दिवसोत्सव मनाने की बात बतलाई-समझाई जाए, तो वे इसे सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। न्यूनतम खर्च में जीवन में नई दिशा का बोध कराने वाला तथा नये उल्लास का संचार कराने वाला यह संस्कार थोड़े ही प्रयास से लोकप्रिय बनाया जा सकता है।

नया उल्लास नया आरम्भ- पति-पत्नी को नये वर्ष में नये उल्लास एवं नये आनन्द से परिपूर्ण जीवन बनाने-बिताने की नई प्रेरणा के साथ अपना नया कार्यक्रम बनाना चाहिए। अब तक वैवाहिक जीवन अस्त-व्यस्त रहा हो, तो रहा हो, पर अब अगले वर्ष के लिए यह प्रेरणा लेनी चाहिए। ऐसी योजना बनानी चाहिए कि वह अधिकाधिक उत्कृष्ट एवं आनन्ददायक हो। उस दिन को अधिक मनोरंजक बनाने के लिए छुट्टी के दिन के रूप में मनोरंजक कार्यक्रम के साथ बिताने की व्यवस्था बन सके, तो वैसा भी करना चाहिए। विवाह दिन को केवल कर्मकाण्ड की दृष्टि से ही नहीं, भावना-उल्लास और उत्साह की दृष्टि से भी विवाह दिन की अभिव्यक्तियों को नवीनीकरण के रूप में मना सकें, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए।

यह तथ्य ध्यान में रखें- गृहस्थ एक प्रकार का प्रजातन्त्र है, जिसमें डिकटेटरशाही की गुंजायश नहीं, दोनों को एक-दूसरे को समझना, सहना और निबाहना होगा। दोनों में से जो हुक्म चलाना भर जानता है, अपना पूर्ण आज्ञानुवर्ती बनाना चाहता है, वह गृह-शान्ति में आग लगाता है। दो मनुष्य अलग-अलग प्रकृति के ही होते और रहते हैं, उनका पूर्णतया एक में घुल-मिल जाना सम्भव नहीं। जिनमें अधिक सामंजस्य और कम मतभेद दिखाई पड़ता

हो, समझना चाहिए कि वे सदगृहस्थ हैं। मतभेद और प्रकृति भेद का पूर्णतया मिट सकना तो कठिन है। सामान्य स्थिति में कुछ न कुछ विभेद बना ही रहता है, इसे जो लोग शान्ति और सहिष्णुता के साथ सहन कर लेते हैं, वे समन्वयवादी व्यक्ति ही गृहस्थ का आनन्द ले पाते हैं।

भूलना न चाहिए कि हर व्यक्ति अपना मान चाहता है। दूसरे का तिरस्कार कर उसे सुधारने की आशा नहीं की जा सकती। अपमान से चिढ़ा हुआ व्यक्ति भीतर ही भीतर क्षुब्ध रहता है। उसकी शक्तियाँ रचनात्मक दिशा में नहीं, विघटनात्मक दिशा में लगती हैं। पति या पत्नी में से कोई भी गृह व्यवस्था के बारे में उपेक्षा दिखाने लगे, तो उसका परिणाम आर्थिक एवं भावनात्मक क्षेत्रों में विघटनात्मक ही होता है। दोनों के बीच यह समझौता रहना चाहिए कि यदि किसी कारणवश एक को क्रोध आ जाए, तो दूसरा तब तक चुप रहेगा, जब तक कि दूसरे का क्रोध शान्त न हो जाए। दोनों पक्षों का क्रोधपूर्वक उत्तर-प्रत्युत्तर अनिष्टकर परिणाम ही प्रस्तुत करता है। इन तथ्यों को दोनों ही ध्यान में रखें।

व्रत धारण की आवश्यकता- जिस प्रकार जन्मदिन के अवसर पर कोई बुराई छोड़ने और अच्छाई अपनाने के सम्बन्ध में प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं, उसी तरह विवाह दिवस के उपलक्ष्य में पतिव्रत और पत्नीव्रत को परिपुष्ट करने वाले छोटे-छोटे नियमों का पालन करने की कम से कम एक-एक प्रतिज्ञा इस अवसर पर लेनी चाहिए। परस्पर “आप या तुम” शब्द का उपयोग करना “तू” का अशिष्ट एवं लघुता प्रकट करने वाला सम्बोधन न करना जैसी प्रतिज्ञाएँ तो आसानी से ली जा सकती हैं।

पति द्वारा इस प्रकार की प्रतिज्ञाएँ ली जा सकती हैं - (१) कटुवचन या गाली आदि का प्रयोग न करना (२) कोई दोष या भूल हो, तो उसे एकान्त में ही बताना-समझाना, बाहर के लोगों के सामने उसकी तनिक भी चर्चा न करना (३) युवती-स्त्रियों के साथ अकेले में बात न करना (४) पत्नी पर सन्तानोत्पादन का कम से कम भार लादना (५) उसे पढ़ने के लिए कुछ नियमित व्यवस्था बनाना (६) खर्च का बजट पत्नी की सलाह से बनाना और पैसे पर उसका प्रभुत्व रखना (७) गृह व्यवस्था में पत्नी का हाथ बँटाना (८) उसके सदगुणों की समय-समय पर प्रशंसा करना (९) बच्चों की

देखभाल, साज-सँभाल, शिक्षा-दीक्षा पर समुचित ध्यान देकर पत्नी का काम सरल करना (१०) पर्दा का प्रतिबन्ध न लगाकर उसे अनुभवी-स्वावलम्बी होने की दिशा में बढ़ने देना (११) पत्नी की आवश्यकताओं तथा सुविधाओं पर समुचित ध्यान देना आदि-आदि।

पत्नी द्वारा भी इसी प्रकार की प्रतिज्ञाएँ की जा सकती हैं, जैसे- (१) छोटी-छोटी बातों पर कुढ़ने, झल्लाने या रूठने की आदत छोड़ना (२) बच्चों से कटु शब्द कहना, गाली देना या मारना-पीटना बन्द करना (३) सास, ननद, जिठानी आदि बड़ों को कटु शब्दों में उत्तर न देना (४) हँसते-मुस्कराते रहने और सहन कर लेने की आदत डालना, परिश्रम से जी न चुराना, आलस्य छोड़ना (५) साबुन, सुई, बुहारी इन तीनों को दूर न जाने देना, सफाई और मरम्मत की ओर पूरा ध्यान रखना (६) उच्छृंखल फैशन बनाने में पैसा या समय तनिक भी खर्च न करना (७) पति से छिपा कर कोई काम न करना (८) अपनी शिक्षा-योग्यता बढ़ाने के लिए नित्य कुछसमय निकालना (९) पति को समाज सेवा एवं लोकहित के कार्यों में भाग लेने से रोकना नहीं, वरन् प्रोत्साहित करना (१०) स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने में उपेक्षा न बरतना (११) घर में पूजा का वातावरण बनाये रखना, भगवान् की पूजा, आरती और भोग का नित्य क्रम रखना (१२) पर्दा के बेकार बन्धन की उपेक्षा करना (१३) पति, सास आदि के नित्य चरण स्पर्श करना आदि-आदि।

हर दाम्पत्य जीवन की अपनी-अपनी समस्याएँ होती हैं। अपनी कमजोरियों, भूलों, दुर्बलताओं और आवश्यकताओं को वे स्वयं अधिक अच्छी तरह समझते हैं, इसलिए उन्हें स्वयं ही यह सोचना चाहिए कि किन बुराइयों कमियों को उन्हें दूर करना है और किन अच्छाइयों को अभ्यास में लाना है। उपस्थित लोगों के सामने अपने संकल्प की घोषणा भी करनी चाहिए; ताकि उन्हें उसके पालने में लोक-लाज का ध्यान रहे, साथ ही जो उपस्थित हैं, उन्हें भी वैसी प्रतिज्ञाएँ करने के लिए प्रोत्साहन मिले।

संस्कार क्रम- विवाह दिवसोत्सव, विवाह संस्कार के संक्षिप्त संस्करण के रूप में मनाया जाता है। उसी कर्मकाण्ड प्रक्रिया का सहारा लेकर उसे नीचे लिखे क्रम से कराया जाना चाहिए -

मंगलाचरण-षट्कर्म कलश पूजन आदि कृत्य सम्पन्न करके संकल्प करें। देवशक्तियों और सत्पुरुषों की साक्षी में संकल्प बोला जाए-

..... नामाऽहं दाम्पत्यजीवनस्य पवित्रता-मर्यादयोः रक्षणाय त्रुटीनाञ्च प्रायश्चित्तकरणाय उज्ज्वलभविष्यद्भूतवे स्वोत्तरदायित्वपालनाय संकल्पमहं करिष्ये।

संकल्प के बाद समय की सीमा का ध्यान रखते हुए देवपूजन, स्वस्ति वाचन आदि क्रम विस्तृत या संक्षिप्त रूप में कराया जाना चाहिए। सामान्य क्रम पूरा हो जाने पर विवाह पद्धति के मन्त्रों का प्रयोग करते हुए नीचे लिखे क्रम से निर्धारित विशेष उपचार कराये जाएँ-

(१) ग्रन्थि बन्धन (२) पाणिग्रहण (३) वर-वधू की प्रतिज्ञाएँ (४) सप्तपदी (५) आश्वास्तना।

(६) आहुति- यज्ञ करें तो अग्निस्थापन, गायत्री मन्त्राहुति, प्रायश्चित्ताहुति करके पूर्णाहुति करें। यदि यज्ञ करने की स्थिति न हो, तो दीपयज्ञ करें। पाँच दीप सजाकर रखें, गायत्री मन्त्र बोलते हुए उन्हें प्रकाशित करें। प्रायश्चित्त आहुति के प्रथम मन्त्र के साथ पति-पत्नी दीपों की ओर अपनी हथेलियाँ करें, जैसे घृत अवघ्राण के समय करते हैं।

(७) एकीकरण- पति-पत्नी एक-एक दीपक उठाएँ। नीचे लिखे मन्त्र पाठ के साथ ज्योतियों को मिलाकर एक ज्योति करें। भावना करें कि हम अपने व्यक्तित्वों को एक दूसरे के साथ इसी प्रकार एकाकार करने का प्रयास करेंगे। दैवी अनुग्रह और स्वजनों के सद्भाव उसमें सहायक होंगे।

ॐ समानी वऽआकृतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ - अथर्व० ६.६४.३

(८) अन्त में दम्पति पुष्पोहार मन्त्र (पृ० २१९) से एक दूसरे को माल्यार्पण करें। फिर सभी लोग मंगल मन्त्र बोलते हुए पुष्पवृष्टि करें, शुभकामना-आशीर्वाद दें।

(९) विसर्जन, जयघोष एवं प्रसाद वितरण के साथ कार्यक्रम का समापन किया जाए।

॥ पर्व प्रकरण ॥

पर्व आयोजन क्यों ? कैसे ?

भारतीय संस्कृति को देव संस्कृति भी कहा जाता है, इसमें मनुष्य को, मनुष्यता को, आदर्शनिष्ठ बनाये रखने के लिए हर स्तर पर प्रखर दर्शन और विवेक संगत परम्पराओं का ऐसा क्रम बनाया गया है कि मनुष्य सहज रूप में ही प्रगति तथा सद्गति का अधिकारी बन सके।

मनुष्य का हित मात्र जानकारीयों से नहीं होता, वह बार-बार भूलता है और याद रहते हुए भी अनेक बातें चरितार्थ नहीं कर पाता। इसके लिए सतत याद रखने या नियमित रूप से अभ्यास करने के लिए व्यवस्था बनाई गयी है। व्यक्तिगत स्तर पर उपासना, साधना, स्वाध्याय, मनन, चिंतन के क्रम बनाये गये। पारिवारिक स्तर पर श्रेष्ठ गुणों के विकास तथा उत्तरदायित्वों के पालन का वातावरण बनाये रखने के लिए षोडश संस्कारों का ताना-बाना बुना गया। इनके प्रभाव से परिवार व्यक्तिगत स्वार्थ के साधन नहीं-श्रेय साधना के आश्रम-तपोवन बन गये। परिवार भाव भी रक्तसम्बन्धों की सीमा से आगे बढ़ते हुए "वसुधैव कुटुम्बकम्" तक विकसित होता चला गया।

व्यक्ति और परिवार के बाद विश्व की तीसरी इकाई है-समाज। व्यक्तिगत दृष्टिकोण परिष्कृत करने के लिए पूजा-उपासना, पारिवारिक रीति-नीति को उत्कृष्ट बनाये रखने के लिए संस्कार प्रक्रिया है। ठीक इसी प्रकार समाज को समुन्नत-सुविकसित बनाने के लिए सामूहिकता, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, नागरिकता, परमार्थ-परायणता, देशभक्ति, लोकमंगल जैसी सत्त्ववृत्तियाँ विकसित करनी पड़ती हैं। उन्हें सुस्थिर रखना होता है, यह भी बार-बार स्मरण दिलाते रहने वाला प्रसंग है-इस प्रयोजन के लिए पर्व-त्यौहार मनाये जाते हैं, इन्हें सामाजिक संस्कार प्रक्रिया ही समझना चाहिए। साधना से व्यक्तित्व, संस्कारों से परिवार और पर्वों से समाज का स्तर ऊँचा बनाने की पद्धति दूरदर्शिता पूर्ण है, इसे हजारों-लाखों वर्षों तक आजमाया जाता रहा है। प्राचीन भारत की महानता का श्रेय इन छोटी-छोटी सत्त्ववृत्तियाँ उत्पन्न करने वाली धर्म के नाम पर प्रचलित विधि व्यवस्थाओं को ही है।